भारतीय ग्रामीण जीवन और प्रेमचन्द की कहानियां

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के
भारतीय भाषा केन्द्र की एम. फिल. की उपाधि
के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डा. केदार नाथ सिंह

प्रस्तुतकर्ता
राम प्रकाश राय

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
(नवम्बर)
1983

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

Gram-JAYENU

Telephone :

New Mehrauli Road,
NEW DELHI-110067

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

न्यू महरौली रोड,
नई दिल्ली - 110067

दिनांक- 15.11.1983

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राम प्रकाश राय द्वारा प्रस्तुत "भारतीय ग्रामीण जीवन और प्रेमचन्द की कहानियाँ" शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालयों में इसके पूर्व किसी भी पदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह सर्वथा मौलिक है।

(डा० नामवर सिंह)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110067

(डा० केदार नाथ सिंह)
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110067

अनुक्रम

			पृष्ठ क,ख,ग
प्रस्तावना	:		
प्रथम अध्याय	:	प्रेमचन्द युग की पृष्ठ-भूमि	1-23
द्वितीय अध्याय	:	प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का सामाजिक पक्ष	24-56
तृतीय अध्याय	:	प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का राजनैतिक पक्ष	57-82
चतुर्थ अध्याय	:	प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का आर्थिक पक्ष	83-99
उपसंहार			100-105
परिशिष्ठ			106-109

आ मु ख

आधुनिक हिन्दी कहानी का इतिहास लगभग एक शताब्दी की अवधि तक प्रशस्त है । इसे विकास क्रम की दृष्टि से पाँच युगों में विभक्त किया जा सकता है । ये युग भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रेमचन्दोत्तर युग और स्वातंत्र्योत्तर युग की संज्ञा से अभिहित किये जाते हैं । इनमें से तृतीय विकास काल अर्थात् प्रेमचन्द युग के सर्वप्रमुख और सर्वोत्कृष्ट कलाकार स्वयं मुंशी प्रेमचन्द हैं । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनका रचना काल प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध का मध्यवर्ती काल है । इस कालावधि का हमारे देश के आधुनिक इतिहास में अनेक दृष्टियों से विशेष महत्व है । प्रेमचन्द की लगभग पौने तीन सौ कहानियाँ इसी अवधि के भारत का सर्वपक्षीय चित्रण करती है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में इस युग की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक पृष्ठभूमि तथा परिस्थितियों के साथ ही समकालीन भारतीय ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की गई है ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष का अध्ययन किया गया है । प्रेमचन्द एक इकाई के रूप में व्यक्ति को ही परिवार और समाज का निर्माता मानते हैं । उनके विचार से संयुक्त परिवार की प्रथा का विश्रृंखलन ग्रामीण जीवन की अखंडता में बाधक सिद्ध हुआ । उनका यह भी मन्तव्य है कि आधुनिक भारत का ग्रामीण समाज अनेक विरोधाभासों, शताब्दियों के शोषण अन्धविश्वासों और अभिशापों के होते हुए भी जीवन्त बना हुआ है ।

इसके तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित ग्रामीण जीवन के राजनैतिक पक्ष का अध्ययन किया गया है । प्रेमचन्द यह स्वीकार करते हैं कि साहित्यकार युग जीवन की राजनैतिक स्थिति का नियंत्रक होता

है । उन्होंने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में यह भी संकेत किया है कि स्वराज्य का आन्दोलन ग्रामों में विशेष रूप से प्रचारित हुआ क्योंकि कृषक और श्रमिक वर्ग बहुपक्षीय शोषण से ग्रस्त था और विभिन्न शोषक वर्गों तथा सरकार से संघर्ष करने में स्वयं को असमर्थ पाकर क्रान्ति और आन्दोलन के माध्यम से ही अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कृत-संकल्प हुआ ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में प्रेमचन्द की कहानी साहित्य में ग्राम जीवन के आर्थिक पक्ष का अध्ययन किया गया है । प्रेमचन्द का यह निश्चित मन्तव्य है कि ग्रामीण जीवन के विशृंखलन का मूल कारण आर्थिक विभीषिका ही है और आर्थिक शोषण के अतिरेक के कारण ही ग्रामीण जनता नगरोन्मुखी हो रही है । प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन की आर्थिक समस्याओं का सिंहावलोकन करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता के निराकरण से ही ग्रामोत्थान संभव है ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में उपसंहार के रूप में अध्ययन का सारांश और निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए यह मान्यता प्रतिपादित की गई है कि प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियां ग्रामीण जीवन के आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक पक्षों का समग्र रूपात्मक चित्र प्रस्तुत करती है और उनमें भारतीय ग्राम जीवन अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ मूर्तिमान हुआ है ।

यह विषय अपनी व्यापकता और गहराई में मुझे इतना कठिन लगता था कि इसके समस्त पक्षों का विस्तारपूर्वक निर्देशन मेरे शोध निर्देशक डा० केदारनाथ सिंह यदि नहीं करते तो इसका पूर्ण होना मेरे वश का न था । इस लघु शोध-प्रबन्ध की खामियां मेरी हैं और खूबियां मेरे निर्देशक की । मैं अपने निर्देशक को भूमिका को औपचारिक आभार में बांधना बेमानी समझता हूँ ।

जिन पुस्तकों और पत्रिकाओं से मैंने सहायता ली है उनके लेखकों और सम्पादकों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

अन्त में मैं श्रद्धेय श्री सदानन्द राय का अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा व सहयोग से मुझे इस कार्य को पूरा करने की सामर्थ्यता मिली । मैं श्री अनिल कुमार श्यामी तथा श्री राम सुमेर यादव के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य में अपना सहयोग प्रदान किया ।

राम प्रकाश राय

राम प्रकाश राय

प्रथम अध्याय

प्रेमचन्द युग की पृष्ठभूमि

प्रेमचन्द युग की पृष्ठभूमि

हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में तृतीय विकास काल को प्रेमचन्द युग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेमचन्द युग की कालसीमा का निर्धारण प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्यवर्ती काल के रूप में किया जाता है। हमारे देश के इतिहास में इस युग का अनेक दृष्टियों से विशिष्ट महत्व है। इस युग में सर्वक्षेत्रीय नवचेतना का जागरण हुआ इस दृष्टिकोण से इस युग की पृष्ठ भूमि का निर्माण 19वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हुआ। इस अवधि में उस पृष्ठभूमि का समुचित रूप से निर्माण हुआ जिसके आधार पर देश को भावी विकास की नवीन दिशाओं की उपलब्धि हुई। यहां पर संक्षेप में राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के उन आधारभूत सूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है जिनकी पीठिका पर प्रेमचन्द युग की प्रतिष्ठा हुई।

राजनैतिक पृष्ठभूमि

देश में राजनैतिक क्षेत्रों में जो विशिष्ट आन्दोलन हुए, वे सब मुख्यतः 19वीं शताब्दी के द्वितीय अर्धांश में आयोजित किये गये। इस समय तक भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम विफल हो चुका था और जनता किसी भी मूल्य पर स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प थी। ब्रिटिश सरकार ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को केवल एक सैनिक विद्रोह अथवा गदर की संज्ञा दी। परन्तु इसी के समानान्तर उसने देश-व्यापी विस्फोट की आशंका से जनता को प्रत्येक दृष्टि से संतुष्ट करने के लिए अनेक घोषणाएं की। अब भारतीय शासन का सूत्र ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर अंग्रेजी राजतंत्र के हाथ में आ गया। यद्यपि महारानी विक्टोरिया

इस अवधि में अपनी उदारतावादी नीति का परिचय देते हुए जनता को अनेक आश्वासन दिये परन्तु फिर भी असंतोष की अग्नि का शमन न हो सका । इस युग में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है । सन् 1885 में इस संस्था के जन्म के पश्चात् प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्वतक इस संस्था का नेतृत्व देश के बौद्धिक चेतना सम्पन्न वर्ग के हाथों मे रहा । इसने ब्रिटिश सरकार के अमानवीय शोषण का तीव्र विरोध किया । इस समय अनेक सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ तथा इन्हीं आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को उत्पति के लिए जमीन तैयार कर दी । श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति का कहना है "जब लम्बी दासता से बंजर हुई भारत की भूमि को सशस्त्र क्रांति के विशाल हल ने खोद कर तैयार कर दिया और जब सुधारकों के दल ने उसमें मानसिक स्वाधीनता के बीज बो दिये,तब यह संभव हो गया कि उसमें से राजनीतिक स्वाधीनता के अंकुर उत्पन्न हों ।" यह सर्वमान्यसिद्धांत है कि मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता तथा सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनैतिक स्वाधीनता असंभव है । डा० जकारिया ने भी लिखा है कि भारत की पुनर्जागृति ने एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने से पूर्व अनेकों सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया । भारतीयों में राष्ट्रीय आत्मसम्मान तथा उत्कृष्ट देशभक्ति की भावना उत्पन्न हुई । ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों के हृदय में उमड़ती चेतना का दमन करने पर यह और भी भड़कती गई और भारतीय राष्ट्रप्रेमी का प्रमुख उद्देश्य विदेशी शासन से मुक्ति पाना बन गया । सामान्य जनता तत्कालीन कठोर ब्रिटिश शासन व्यवस्था से तथा अमानवीय अत्याचारों से ग्रस्त थी । अतः जनता के हृदय में प्रतिशोध की भावना भड़क रही थी चूंकि देश में शासन विरोधी भावना भड़क रही थी अतः अंग्रेज डर

रहे थे कि कहीं भयानक विस्फोट न हो जाये । ब्रिटिश सरकार जनता की क्रांतिकारी भावना को मोड़कर वैधानिक मार्ग की ओर अग्रसर कर रही थी अत: कांग्रेस की स्थापना भारत में ब्रिटिश शासन की रक्षा हेतु हुई थी । श्री ह्यूम ने कहा था कि भारत में असंतोष की बढ़ती हुई शक्तियों से बचने के लिए एक रक्षा नली की आवश्यकता थी तथा कांग्रेस से बढ़कर रक्षा नली कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती थी । प्रारम्भ में तो कांग्रेस को सरकार का समर्थन प्राप्त हुआ किन्तु बाद में सरकार के रुख में परिवर्तन होने लगा क्योंकि सरकार पर बार-बार विभिन्न अधिवेशनों में शासन सुधार, भारतीयों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा सुधारने के संबंध में राजनीतिज्ञों द्वारा काफी बल दिया जा रहा था ।

कुछ राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय आन्दोलन को उग्र रूप देने के पक्ष में थे । तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष आदि ऐसे ही उग्रवादी नेता थे । इन पर आयरलैण्ड जैसे देशों के स्वाधीनता आन्दोलन का प्रभाव था । यह दल ब्रिटिश सरकार से असहयोग के पक्षपाती थे, और ब्रिटिश सरकार से किसी भी प्रकार की दयनीय भीख नहीं मांगना चाहते थे तथा अपने असहयोग आन्दोलन को उग्र रूप देकर अंग्रेज सरकार को भारत का स्वराज्य देने के लिए बाध्य करना इनका प्रमुख उद्देश्य था । स्वराज्य प्राप्ति को इनका जन्मसिद्ध अधिकार था जिसके लिये ये निरन्तर संघर्ष करने के लिए तत्पर थे । स्वराज्य प्राप्ति के इस स्वरूप को अनेक राजनीतिज्ञों ने अपनाया जिसका प्रभाव सामान्य जनता पर भी पड़ा तथा भारत के कोने-कोने में स्वराज्य प्राप्ति की एक लहर सी दौड़ गई । "प्रेमचन्द साहित्य, समाज और राजनीति को एक कड़ी के रूप में देखते थे । वे साहित्य की तरक्की पर समाज और राजनीति को निर्भर मानते थे । वे तीनों को साथ-साथ चलने वाली चीज मानते थे । शिवरानी देवी के यह पूछने पर "तो क्या यह जरूरी है

कि तीनों को साथ-साथ लेकर चला जाय ?" प्रेमचन्द प्रत्युत्तर में कहते हैं कि "इन तीनों का उद्देश्य जब एक ही है तो साहित्य, समाज और राजनीति का संबंध अटूट है ।"[1]

सामाजिक पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी में भारतीय समाज अनेक बुराईयों से युक्त था । महान आदर्शों की प्रतिमूर्ति भारतीय नारी समाज द्वारा महानता के आसन पर आरूढ न करके केवल पुरुषों की उपभोग्य सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती थी । उसका स्थान दासी के रूप में था । घर में कन्या का जन्म दुर्भाग्य का प्रतीक था । उसे जन्मते ही मार दिया जाता था । नारी का सम्पूर्ण जीवन पराधीनावस्था में व्यतीत होता था । बचपन में पिता व भाई के कठोर नियंत्रण में, युवावस्था में पुत्रों के संरक्षण में जीवनयापन करती थी । विधवा होने पर नारी को अपने पति की चिता पर भस्म होने के लिए समाज द्वारा बाध्य किया जाता था । सती प्रथा की इस दूषित परम्परा पर भारतीय समाज को गर्व का अनुभव होता था । इसके अतिरिक्त समाज में बाल विवाह, बहु-विवाह प्रथा का भी प्रचलन था जिससे भारतीय नारी अत्यधिक दीन-हीन दशा में साथ-साथ समाज में वर्ण-व्यवस्था के अनुसार छुआछूत तथा ऊंचनीच का भेदभाव भी काफी तीव्रता पर था । एक ही भारतीय समाज के लोग एक दूसरे को अवर्ण वर्गीय मानकर सम्पर्क स्थापित न करते थे, खानपान तथा विवाह आदि के नियम अत्यन्त कठोर थे । अनेक अन्धविश्वासों, कुरीतियों, परम्परागत रीतिरिवाजों तथा रुढ़ियों के बन्धन में भारतीय समाज बंधा हुआ था जिसका प्रतिनिधित्व स्वार्थी रुढ़िवादी पण्डा पुरोहित वर्ग के हाथों में था। इस प्रकार 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज की जो स्थिति थी उसके अनुसार योगों से पीड़ित भारतीय नारी की दशा अत्यन्त शोचनीय

---

1. "प्रेमचन्द - कृति व्यक्तित्व और कथा संसार", नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ- 97

थी । इसके उत्थान के लिए तत्कालीन समाज सुधारकों ने आवाज उठाई । जकारिया का कथन है कि उस समय हिन्दू समाज सुधारकों ने आवाज उठाई उस समय हिन्दू समाज तथा भारतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बड़ी देश सेवा समझी जाती थी । राजाराम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, श्री केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे महान समाजसुधारकों ने ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज जैसी अनेक संस्थायें निर्मित कर समाज सेवा एवं समाज सुधार का बीड़ा अपने हाथ में लिया । इन समाज सुधारकों के प्रमुख उद्देश्य जाति व्यवस्था समाप्त करना, विधवा विवाह, बाल-विवाह-निषेध, बहु-विवाह प्रथा समाप्त करना, नारी शिक्षा का प्रसार आदि थे । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन समाज सुधारकों का एक बहुसंख्यक रूढ़िवादी वर्ग से संघर्ष करना पड़ा । यह रूढ़िवादी वर्ग किसी भी कीमत पर परम्परागत रूढ़ियों, विश्वासों व मान्यताओं में परिवर्तन नहीं चाहता था ।

इस युग में केवल भारतीय नारी ही समाज द्वारा शोषित न थी वरन् अछूत निम्न वर्ग भी शोषण का शिकार था । इसके उद्धार के लिए दलित जाति संघ की स्थापना कर दलित वर्ग को समानाधिकार प्राप्ति के लिए जागृत किया तथा इस दलित वर्ग के उत्थान के लिए अनेक संगठन व संस्थायें बनी इसके प्रमुख नायक गोपालकृष्ण गोखले थे । खानपान, बन्धान जाति-पाँति व छुआछूत के भेदभावों को समाप्त कर समस्त जातियों में अन्तर्जातीयता का बीजारोपण करने का प्रयास किया । इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से यह युग सामाजिक जागरण का युग कहा जा सकता है । यद्यपि इसमें अनेक उतारचढ़ाव तथा संकल्प-विकल्प दृष्टि में आए।

धार्मिक पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी चूंकि क्रांतिकारी परिवर्तन का युग था अतः इस समय धार्मिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जिसके परिणाम स्वरूप मध्ययुगीन विकृत धार्मिक स्वरूप एवं विचार लुप्त हुए तथा नवीन विचारधारा ने जन्म लिया व धर्म का स्वस्थ स्वरूप समाज के समक्ष उपस्थित हुआ । धार्मिक परिवर्तन का कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक विचारधाराएं थीं । मध्ययुग में वर्ण-व्यवस्था के नियम इतने कठोर थे कि अपने ही समाज का दूसरा सदस्य अछूत समझा जाता था । उससे सम्पर्क तो दूर रहा उसकी परछाई पड़ना भी अशुभ माना जाता था । अवर्ण तथा सवर्ण दो वर्गों में समाज विभाक्त था । जो सामाजिक अधिकार सवर्ण जाति को प्राप्त थे अवर्ण वर्ग उनमें वंचित था । धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा मन्दिर प्रवेश अवर्ण वर्ग के लिए निषेध था । इस सवर्ण वर्ग के नियन्ता रुढ़िवादी जातीयता के कठोर समर्थक पण्डा तथा पुरोहित वर्ग था । उन्होंने ईश्वर की कल्पना विभिन्न देवताओं के रूप में कर रखी थी जिससे विभिन्न देवों की विभिन्न पूजन विधियां सम्पन्न कर ये पुरोहित वर्ग अर्थलाभ प्राप्त करते व स्वार्थ सिद्धि करते थे । इस प्रकार समाज के धार्मिक क्षेत्र, सामाजिक मान्यताओं, विचारों तथा धार्मिक चिन्तन के क्षेत्र में इस स्वार्थी एवं अशिक्षित पुरोहित वर्ग को एकाधिकार प्राप्त था जो अपने स्वार्थ सिद्धि के कारण किसी भी प्रकार का परिवर्तन समाज में नहीं चाहता था । इस वर्ग का नियंत्रण समाज पर इतना कठोर था कि जाति को पनपने के लिए किसी भी प्रकार की सुविधा न थी । भारतीय समाज को धार्मिक व सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में दो वर्गों में विभाजित देख ईसाई मिशनरियों को ईसाई धर्म प्रचार का सर्वोत्तम अवसर प्राप्त हुआ । ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओं को आर्थिक सहायता पहुंचाकर

था समाजसेवा की आड़ लेकर ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। हिन्दू धर्म में प्राचीन विचार तथा दर्शन तो लुप्त हो गये तथा अन्ध विश्वास एवं कुरीतियों का पालन ही धर्म का श्रेष्ठ रूप माना जाने लगा, जिससे न केवल निम्न वर्ग वरन् सम्पूर्ण हिन्दू समाज ही त्रस्त था। हिन्दू धर्म तथा समाज के इस विकृत स्वरूप के अन्तर्गत मनुष्य को स्वतंत्र चिन्तन एवं विकास का अवसर न था, जबकि ईसाई धर्म में मनुष्य को सामाजिक जीवन में स्वतंत्रता प्राप्त थी तथा मानव अस्तित्व को महत्ता दी जाती थी। परिणामस्वरूप हिन्दू, विशेषकर निम्न जाति ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुई जहां उन्हें सामाजिक तथा वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस प्रकार अनेक हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन का कारण चूंकि ईसाइयों की सामाजिक स्वतंत्रता तथा हिन्दुओं का कठोर धार्मिक नियंत्रण था। अतः तत्कालीन समाज सुधारकों की दृष्टि भारतीय धर्म, समाज तथा संस्कृति की ओर गई जिससे अनेक सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन आन्दोलनों द्वारा भारतीय धर्म, समाज, संस्कृति में अनेक आधुनिक परिवर्तन हुए तथा आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, तथा भारत का ब्रह्म समाज जैसे समाजों की स्थापना हुई। इन समाजों ने मध्य-युगीन विकृत धार्मिक विचारधाराओं को एक क्रांतिकारी मोड़ देनेवाले विचारों को जन्म दिया तथा धर्म के उदारतावादी दृष्टिकोण को अपनाया।

आर्थिक पृष्ठ-भूमि

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतवर्ष कृषि प्रधान देश था। प्रत्येक ग्राम एक आर्थिक इकाई के रूप में था दैनिक आवश्यकता की समस्त वस्तुएं प्रत्येक ग्राम में उपलब्ध हो जाती थी। जाति व्यवस्था के आधार पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। आवागमन के साधन आधुनिक रूप में

न होकर प्रकृति प्रदत्त थे अत: नदियों आदि से व्यापारिक कार्य सम्पन्न होते थे अधिकतर बड़े-बड़े शहर नदियों के किनारे बसे हुए थे । अंग्रेजों ने भारत आगमन पर अपनी आर्थिक तथा व्यापारिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने का प्रयास प्रारम्भ किया । भारतवर्ष को अंग्रेज सोने की चिड़िया कहकर पुकारते थे । उनका भारत के प्रति आकर्षण प्रारम्भ से ही था । आर्थिक नीति को सफलता के लिए उन्होंने अनेक नियम कानून बनाये । ब्रिटिश कानूनों के आधार पर भारतीय कृषकों की भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार दिये गये, जमींदारी प्रथा का प्रचलन कर अंग्रेजों ने अपनी सहायता के लिए एक सम्पन्न वर्ग तैयार किया । अपनी आर्थिक समृद्धता के लिए अंग्रेज भारत से सस्ते मूल्य पर कच्चा माल खरीदकर इंग्लैण्ड भेजते तथा वहां के कारखानों का बना समान भारत को निर्यात करते थे जिसके लिए उन्होंने भारत में रेलों का जाल बिछा दिया ताकि भारत के कोने-कोने से वे कच्चा माल एकत्र कर सकें तथा इंग्लैण्ड निर्मित वस्तुओं को भारत के प्रत्येक स्थान पर पहुंचा सके । इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के देशी उद्योग धंधों का लोप हो गया । भारतीय कृषकों को रुई, जूट तथा गन्ना आदि के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन दिया जाने लगा । कृषक भी आर्थिक लाभ के कारण इन व्यापरिक फसलों का ही अधिक उत्पादन करने लगे तथा खाद्यान्न का उत्पादन क्षीण हो गया । अत: भारतीय उद्योग धंधों के विनाश, व्यापारिक फसलों के उत्पादन तथा खाद्यान्न उत्पादन के अभाव के कारण भीषण अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई । ऐसी संकटकालीन स्थिति को देख भारतीय कृषकों ने व्यापारिक फसलों के स्थान पर खाद्यान्न उत्पादन प्रारम्भ कर दिया जिससे कृषकों को आर्थिक लाभ हुआ किन्तु जूट तथा कपड़े के व्यापारिक उद्योग को क्षति पहुंची ।

साहित्यिक पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जहां देश के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए वहां साहित्यिक क्षेत्र भी इस परिवर्तन से अछूता न रह सका । भारत में पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति का प्रभाव भारतीय शिक्षा व संस्कृति पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा । देश को साहित्यिक उन्नति पर पाश्चात्य शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव हुआ । भारत में अनेक बड़े-बड़े शहरों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा गया । विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ हिन्दी भाषा का भी विस्तृत अध्ययन किया गया । शिक्षा ग्रहण करने के क्षेत्र में जनता की रुचि बढ़ी लेकिन लोगों का आकर्षण अंग्रेजी भाषा की ओर अधिक था क्योंकि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से उन्होंने सरकारी नौकरियां प्राप्त करने की सुविधायें ब्रिटिश सरकार से प्राप्त होती थीं । हिन्दी की तरफ तो लोगों का ध्यान था किन्तु संस्कृत तथा फारसी भाषा का विकास इस युग में क्षीण दशा में रहा ।

हिन्दी भाषा का स्वरूप राजा लक्ष्मण सिंह के समय तक अधिक स्पष्ट तथा निश्चित हो चुका था जिसमें उसके भावी स्वरूप की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती थी । हिन्दी भाषा के जनता में प्रभुत्व निर्माण में कुछ प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों तथा लेखकों की रचनाओं की आवश्यकता हुई अतः जनता की रुचि के अनुकूल गद्य साहित्य का हिन्दी में निर्माण प्रारम्भ हुआ । इसी युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे विद्वान का साहित्य क्षेत्र में आगमन हुआ, जिनका प्रभाव हिन्दी भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में पड़ा । भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य में एक नवीन युग माना जाता है जिसमें गद्य को भाषा का परिमार्जन हुआ । इसी कारण भारतेन्दु जी को हिन्दी गद्य का प्रवर्तक कहा जाता

है । इस समय नवीन विकासवादी विचारों का जनता पर काफी प्रभाव था, जीवन की समस्त दिशा में जागृति की ओर बढ़ रही थी, जनता के हृदय में देश हित की लहरियां उमंग भर रही थीं, बंगला साहित्य में इस समय तक काफी नवीनता दृष्टिगोचर हो रही थी जिसका प्रभाव भारतेन्दु पर पड़ा तथा उन्होंने हिन्दी साहित्य तथा भाषा के विकास की ओर ध्यान दिया तथा हिन्दी साहित्य को नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया । इसी युग में पं० बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी जैसे प्रतिभा सम्पन्न लेखकों का योगदान विशेष रूप से मान्य है । ये ही भारतेन्दु युग के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। "प्रेमचन्द पहले साहित्यकार थे जो कहानी की सामग्री के लिए गांवों की ओर गये और उन्होंने सीधे-साधे देहात के घटना-हीन तथा नीरस जीवन को भी अपनी कहानियों का विषय बनाया । उन्होंने इन सीधे-साधे धरती पुत्रों, क्लर्कों और बड़े-बड़े व्यापारियों के मासूली मुंशियों के मन की हलचल को व्यक्त किया । वह उनके संघर्षों, प्रलोभनों और कमजोरियों, उनकी आशाओं और आकांक्षाओं, उनकी सहज धार्मिकता और अन्धविश्वासों से भली-भांति परिचित थे । किसान का मन उनके लिए खुली हुई पुस्तक के समान था ।"[1]

भारतवर्ष एक ऐसा विशाल देश है जिसकी 80 प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है । अत: भारतीय जीवन का वास्तविक रूप हमें ग्रामों के समाज में ही उपलब्ध होता है । कुल जनसंख्या का बीसवां भाग हमें नगरों में मिलता है किन्तु हमें कुछ परिस्थितियोंवश नगरों तथा ग्रामों के जीवन दर्शन में विषमता दृष्टिगत होती है । अत: भारतीय जीवन का

---

1. "प्रेमचन्द : एक विवेचन," इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 112

अर्थालम्बन कृषि पर है या यों कहिये कि भारत कृषि प्रधान देश है तथा कृषि का विस्तृत स्वरूप हमें ग्राम्य जीवन में ही परिलक्षित होता है। अत: ग्राम्य जीवन का विस्तृत रूप से अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि जीवन से संबंधित समस्त पक्षों को लेकर ग्राम्यजीवन का अध्ययन किया जाये। उसके आन्तरिक तथा वाह्य ढांचे को भलीभांति समझा जाये। भारतीय सभ्यता का बीजारोपण हमें गावों में ही प्राप्त होता है। अत: हमारी सभ्यता इसी केन्द्रीय धुरी के चारो ओर घूमती दृष्टिगत होती है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि ग्रामीण जीवन का विस्तृत अध्ययन करने के लिए उसे विभिन्न विषयों में विभक्त किया जाय। ये विषय ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष, राजनैतिक पक्ष, धार्मिक पक्ष तथा आर्थिक पक्ष हो सकते हैं। इन आधारों को अपने-अपने समक्ष रखते हुए भारतीय ग्रामीण जीवन के बीसवीं प्रथम अर्धशती कालीन स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। जिसके अन्तर्गत स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात् का ग्रामीण जीवन का स्वरूप आ जाता है।

ग्रामीण जीवन का सामाजिक पक्ष

साहित्य समाज का दर्पण होता है अत: समाज का प्रतिबिम्ब उसमें परिलक्षित होना स्वाभाविक तथा अवश्यम्भावी है। प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य अनेक साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्थितियों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है। भारतीय समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता वर्ण व्यवस्था रही है। वर्ण व्यवस्था के ही आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने कार्य तथा अधिकार थे। प्रत्येक वर्ण की निश्चित एवं अटूट सीमा रेखाएं थीं जिनका उल्लंघन अक्षम्य अपराध था। ग्रामीण समाज इस वर्ण-व्यवस्था से विशेष रूप से प्रभावित था जिससे भारतीय ग्रामों में हमें अनेक जातियां तथा उपजातियां परिलक्षित

होती हैं । इन समस्त जातियों का आपस में कोई संबंध नहीं था । इस अपनी जाति का ग्रामीण समाज में अपना विशिष्ट महत्व होता था यह जातीयता की भावना ग्राम्य समाज में अपनी गहरी जड़ें जमाए हुए थी । समाज सांस्कृतिक उत्सव अपनी अपनी जाति में अलग-अलग थे । इनके बिना ग्राम्य जीवन की कल्पना भी असंभव थी । इन उत्सवों को सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व जाति-बिरादरी के हाथ में था । अपनी-अपनी जातियाँ तथा उपजातियों का अपने समाज पर नियंत्रण रहता था जिससे व्यक्ति के कार्य नियंत्रित तथा मर्यादित रहते थे । इन ग्रामीण सामाजिक विधानों को चुनौती देना किसी भी व्यक्ति के लिए संभव न था । उसकी मर्यादा का उल्लंघन करने वाला किसी भी प्रकार चैन से नहीं रह सकता था । आपसी संबंध या रक्त के संबंध अपनी जाति तक ही सीमित रहते थे । इनके प्रतिदिन के जीवन आदर्श अपनी जातीय मान्यताओं पर ही आधारित होते थे । व्यक्ति के जन्म से ही सामाजिक अधिकार तथा पारस्परिक संबंध सदैव के लिए निश्चित हो जाते थे । ग्राम में यदि कोई व्यक्ति अपनी जाति को छोड़कर अन्य जाति से पारिवारिक संबंध स्थापित कर लेता तो उसे इसका प्रायश्चित जीवन पर्यन्त करना पड़ता था । यह व्यवस्था व्यक्ति के विकास में बाधक थी । उसका चतुर्दिक विकास न हो पाता था तथा जातीय व्यवसाय को वह पैतृक सम्पत्ति के रूप में स्वीकार कर लेता । जिससे एक क्षेत्रीय कुशलता ही प्राप्त कर पाता था । ब्रिटिश शासन काल में कृषि ही ग्रामीणों को जीविका का एकमात्र साधन रह गया था । जो आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक न था किन्तु फिर भी इसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में आने वाली पीढ़ी को स्वीकार करना पड़ता है ।

ग्राम्य जीवन की सामाजिक रीतियों, मूल्य तथा आदर्शों में भी तीव्रगति से परिवर्तन हो रहा था । स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के ग्रामों का साधारण व्यक्ति भी अपनी सामाजिक तथा वैयक्तिक स्थिति को

समझने लगा था । पहले का सरल तथा निष्कपट स्वभाव का कृषक अथवा ग्रामीण व्यक्ति अब नई हवा लगने के कारण, स्वार्थी व बेईमान होता जा रहा था । संयुक्त परिवार टूटने के कारण ग्रामीण व्यक्ति शहरों की ओर उन्मुख हो रहा था । दया, ममता तथा ईमानदारी का चिन्ह गांव के किसी भी क्षेत्र में नहीं रहा । झूठ तथा फरेब गांव की आत्मा को अपवित्र कर रहे थे । गांव के स्वरूप परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए डा० रामदरश मिश्र ने लिखा है - "गांवों का स्वरूप भी बहुत कुछ बदल गया है । वहां के भी जीवन मानों में शहरी जीवन-मानों का संक्रमण हो रहा है । परम्परा और प्रगति, अंधविश्वास और विज्ञान, स्वार्थलिप्सा और सरलता का संघर्ष गांवों की जीवन स्थिति को नई भंगिमा, प्रदान कर रहा है ।[1] गांव के व्यक्ति जो एक दूसरे के दु:ख से दुखी तथा सुख से सुखी थे पारस्परिक वैमनस्य को अपने हृदय में स्थान दे रहे थे । "शहर की रिश्तेदारी तथा गांव की राम-राम बराबर है" वाली कहावत अब सही नहीं उतर रही थी । भारत के अधिकांश भागों में परिवार तथा रिश्तेदारी के संबंधों का महत्व अन्य देशों की अपेक्षा अधिक माना जाता रहा था । स्वतंत्रता के पश्चात् ग्राम्यजीवन के इन पारिवारिक संबंधों में भी परिवर्तन हो गया । संयुक्त परिवार अपने परम्परागत प्राचीन ढांचे को तोड़कर छोटी-छोटी स्वतंत्र पारिवारिक इकाईयों में बंट रहा था, एकता अनेकता में विभाजित हो रही है, मैं तथा तू और मेरा तथा तेरा की भावनाओं का उदय एवं विकास हुआ ।

ग्राम्य समाज की स्थिति को देखते हुए ग्राम्य समाज को तीन वर्गों में विभाजित देखा जाता है । जिसके अन्तर्गत प्रथम वर्ग उच्चवर्ग था जिसके अन्तर्गत पूंजीपति तथा जमींदार आदि आते थे । इनको शोषकवर्ग की संज्ञा से भी जाना जा सकता है । जिनके शोषण के शिकार ग्रामीण कृषक तथा

---

1. "हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा," डा० रामदरश मिश्र, पृष्ठ 14।

मजदूर आदि थे । यह वर्ग वह था जो आर्थिक तथा सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न वर्ग था तथा जनता का शोषण करके भी समाज में सम्मानित वर्ग माना जाता था । दूसरा वर्ग मध्यम वर्ग था जिसमें नौकरी पेशेवारव्यक्ति सम्मिलित थे तथा तीसरा वर्ग निम्न वर्ग था जिसके अन्तर्गत ग्रामीण कृषक तथा मजदूर जिनमें खेतीहर मजदूर तथा अन्य पेशेवर मजदूर आते थे । इस प्रकार ग्रामीण समाज में वर्ग संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर था । शोषक अथवा पूंजीपति वर्ग निरन्तर विकास की ओर बढ़ता जा रहा था तथा निम्न वर्ग अथवा शोषित वर्ग निरन्तर पतनोन्मुख होता जा रहा था । अतः तत्कालीन ग्रामीण समाज में व्यक्ति दो वर्गों में विभाजित थे । "देहाती जीवन का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द ने लोगों को दो वर्गों में बांटा है - शोषक और शोषित । वह उन सबको गिनवाते हैं जो किसानों और भूमिहीन मजदूरों का शोषण करते हैं । जमींदार सबसे पहले आता है । पुराने ढंग का जमींदार वर्ग गायब हो रहा है और उसके स्थान पर एक नये ढंग का जमींदार वर्ग पैदा हो रहा है जो गरीब जनता पर अत्याचार करने में अधिक निर्दय है ।"[1]

ग्रामीण जीवन का राजनीतिक पक्ष

ग्रामवासियों के संबंध में यह धारणा बनी हुई है कि वे अत्यन्त सरल एवं सहज स्वभाव वाले होते हैं । "इस विश्व में रहकर भी विश्वचालित दाव-पेचों से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं, वे न सामाजिक गतिविधियों से परिचित होते हैं और न राजनैतिक दाव-पेचों से राजनीति का क्षेत्र जो कि विभिन्न दाव-पेचों से संयुक्त होता है मगर ही हो सकते हैं, गाँव नहीं, किन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ यह धारणा गाँव के विषय में असत्य सिद्ध हुई ।

---

1. "प्रेमचन्द : एक विवेचन," इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 131

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दिया गया ग्रामीण जनता का सहयोग इसका सशक्त उदाहरण है । स्वतंत्रता संग्राम में न केवल नगरवासियों ने वरन् ग्रामवासियों ने भी तन-मन तथा धन से सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। श्री ए० आर० देसाई ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - "वास्तव में ग्रामीण कृषकों के मध्य उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता और उनके दिनोंदिन बढ़ते हुए राजनीतिक क्रियाकलाप आज के मानवीय राजनीतिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं ।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति के लम्बे संघर्ष में हमारे ग्रामीण भाइयों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था । इतना ही नहीं ग्रामीण स्त्रियों के द्वारा सम्पन्न किये गये शौर्यपूर्ण कार्य भी इस सत्य को उद्घाटित करने में समर्थ है । हमारे देश का इतिहास इसका साक्षी है कि स्वतंत्रता प्राप्ति में ग्रामीण जनता का महत्वपूर्ण सहयोग क्रांतिकारी नेताओं को प्राप्त हुआ और आज भी हमारा देश उन ग्राम-वासियों का ऋणी है ।

स्वतंत्रता के पूर्व शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग तथा जमींदार वर्ग ग्रामीण जनता के शोषण में व्यस्त थे । जमींदार तथा पूंजीपति वर्ग भी अपने स्वार्थों की पूर्ति के कारण विदेशी सत्ता को अपना सहयोग तथा समर्थन प्रदान करता था । राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेज, शहरी क्षेत्रों में पूंजीपति वर्ग तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदार वर्ग अपना मनमाना अत्याचार तथा शोषण कर रहे थे । समस्त नगरीय तथा ग्रामीण जनता इनके अमानवीय अत्याचारों का शिकार थी । जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप देश सन् 1947 में स्वतंत्र हो गया । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के जननायकों का ध्यान ग्रामीण जनता की ओर गया । गाँवों में कृषक सभाओं के माध्यम

---

1. "रूरल सोशियलोजी इन इन्डिया," श्री ए० आर० देसाई, पृष्ठ 46

से कृषकों का रोष उभर रहा था । इस रोष को समाप्त करने के लिए तथा सामन्ती व्यवस्था समाप्त करने के लिए योजना बनाई गई जो जमींदारी उन्मूलन के नाम से जानी जाती है । डा० पूरनचन्द्र जोशी ने लिखा है - "जमींदारी उन्मूलन ने भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनरुद्धार की दशा में लगान उपजीवी जमींदार और जागीरदार - वर्ग के अधिकारों और आधिपत्य को किसी हद तक घटाकर कृषि विकास की पूर्व-स्थितियां पैदा कीं ।[1] रामविहारी सिंह तोमर ने भी यही मत व्यक्त करते हुए लिखा है - "जमींदारी उन्मूलन का मुख्य आधार आर्थिक कारण नहीं वरन् राजनीतिक कारण था, और वह था जमींदार और जनता के बीच सदैव से चला आया संघर्ष । उसी के परिणाम स्वरूप जमींदारी उन्मूलन हुआ ।[2] इन ग्रामीण वासियों को राजनीति का ज्ञान परिस्थितियों से टकरा-टकरा कर हुआ । इन्हें अपने अधिकारों के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन में कई बार जेल भी जाना पड़ता था । जेल की अनेक यातनाएं सहते किन्तु मुख से उफ तक न निकालते वरन् जेल के दरवाजों ने इनकी राजनीतिक विचारधाराओं को और भी अधिक परिपक्व बना दिया था ।

प्रारम्भ से ही भारतवासियों का धर्म के प्रति अगाध विश्वास रहा है । भारत का अतीत धर्म की दृष्टि से अतिगौरवमय रहा है । समाज के प्रचलित धार्मिक नियम समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए मान्य रहे हैं । मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न धार्मिक कृत्यों को विभिन्न अवसरों पर सम्पन्न करता है । जो उनके जीवन के आवश्यक कार्य समझे जाते रहे हैं । किन्तु समय के साथ-साथ भारत में धर्म का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा है । धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप होता जा रहा

---

1. "भारतीय ग्राम," "सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास;" डा० पूरनचन्द जोशी, पृष्ठ 44
2. "ग्रामीण समाजशास्त्र," "श्री रामविहारी सिंह तोमर, पृष्ठ 413

था । डा० राधाकृष्णन ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -"धर्म वह अनुशासन है जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है,काम,क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है,नैतिक बल को उन्मुक्त करता है,संसार को बचाने का महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है ।[1] हमारा वैदिक धर्म भी इन्हीं मान्यताओं से परिपूर्ण था, सांस्कृतिक मान्यताओं से संयुक्त विभिन्न पवित्र विश्वास ही धर्म के अन्तर्गत आते थे । किन्तु समय ने धर्म के इस स्वरूप को कुत्सित कर दिया । ग्रामीण जनता इस कुत्सित धर्म के चक्र में विशेष रूप से फंसी हुई थी,वह धार्मिक अन्धविश्वासों में जकड़ी हुई थी । ग्रामों में धार्मिक मान्यताएं यद्यपि विस्तृत रूप से देखी जाती थीं किन्तु ये मान्यताएं अत्यन्त संकीर्ण हो गई थीं । वैदिक धर्म के स्थान पर ग्रामों में धर्म के ठेकेदारों के हाथों अनाचारी धर्म पनप रहा था । एक ही समाज के व्यक्ति धार्मिक आधार पर उच्च नीच माने जाने लगे थे । साम्प्रदायिकता का प्रभाव बढ़ता जा रहा था । एक ब्राह्मण के द्वार पर चमार की छाया तक अशुभ समझी जाती थी । मूर्तिपूजा तथा पत्थर पूजा का बोलबाला था । धर्म का मूल स्वरूप विकृत हो गया था । समाज में अनेक कुरीतियाँ पनप रही थीं । परम्परागत मान्यताएं और रीतिरिवाज समस्त धर्म के ही महत्वपूर्ण अंग थे । ग्रामवासियों की आस्थाएं इस कुत्सित धर्म के स्वरूप से आच्छादित थीं । धर्म इस ग्रामीण जनता को भयभीत किये था । एक सारहीन धर्म उनके प्राणों को कैद किये हुए था । इनके प्रत्येक कार्य की कसौटी यह कुत्सित धर्म ही था । धर्म के ठेकेदारों ने अन्याय तथा अत्याचारों को सहन करना ग्रामवासियों के धर्म का ही एक अंग था । पुनर्जन्म में आस्था, ईश्वर में आस्था, अन्धविश्वास,अन्ध मान्यताएं तथा भाग्य-

---

1. "धर्म और समाज," डा० राधाकृष्णन, पृष्ठ 45

वादिता धार्मिक व्यवस्था के ही परिणामस्वरूप सर्वत्र दिखाई देती थी। ग्रामीणों को अपने भाग्य पर ही भरोसा रहता था । जमींदारों, कारिन्दों तथा महाजनों के अत्याचारों को सहन करना भी उनके भाग्य में ही लिखा हुआ है, इसलिए इन आपत्तियों तथा अन्याय को वे सहर्ष सहन करते थे । महाजनों के भाग्य में सुख लिखा है इसलिए वे सुखी जीवन व्यतीत करते हैं ऐसी धारणा ग्रामवासियों के हृदय में घर कर गई थी । इन विचारधाराओं के कारण ग्रामीण जनता निराशावादी तथा भाग्यवादी बनती जा रही थी । धार्मिक अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों को बढ़ावा देने वाला ब्राह्मण वर्ग था । क्योंकि धर्म के माध्यम से ही वह धर्म भीरु ग्रामीण जनता पर अपना शासन करने तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति करने में सफल होती थी । ब्राह्मण को ग्रामवासी देवतुल्य मानते । उनके लिए ब्राह्मण की चरण धूलि भी पूज्य थी ।

धार्मिक अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के बावजूद भी गाँवों में धार्मिकता का नयास्वरूप भी कहीं कहीं उभरता प्रतीत होता है । वहां की जनता स्वतंत्रता के पूर्व ही यातनाओं को सहन करते हुए इतनी उदार हो गई थी । उसने धर्म के तत्कालीन कुत्सित स्वरूप को तिलांजली देना ही अपने जीवन के लिए श्रेयष्कर समझा तथा इस स्वरूप को छोड़ने में उसेने किसी प्रकार का संकोच न किया । इसके अन्तर्गत नवीन पीढ़ी सम्मिलित प्रभुता के स्थान पर सांसारिकता को महत्त्व देने लगी थी । ये किसी भी कार्य को करते हुए धर्म तथा अधर्म, पाप और पुण्य को ध्यान में रखकर अर्थलाभ को ध्यान में रखने लगे थे । क्योंकि उन्होंने आर्थिक विपन्नता का साम्राज्य अपने जीवन में काफी समय तक देखा था । जिस धर्म के अवलम्ब को लिए हुए वे अपनी जीवन नौका खे रहे थे वह उन्हें डगमगाती प्रतीत होने लगी थी । अत: आर्थिक लाभ के समक्ष धार्मिक विचारों का उदय हुआ, धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता

का स्वरूप निखरा । इस प्रकार धीरे-धीरे ग्रामीण नवयुवक प्राचीन धार्मिक सीमा रेखाओं को लांघकर जीवन नवीन क्षेत्र में पदार्पण करने लगे थे ।

ग्रामीण जीवन का आर्थिक पक्ष

ग्राम्य जीवन की अर्थव्यवस्था कृषि एवं कुटीर उद्योग धंधों पर आधारित रही है । भारत की 82 प्रतिशत जनसंख्या गावों में रहती है तथा उसका अधिकांश भाग कृषि पर अवलम्बित है - कोई खेती करता है तो कोई खेतों में मजदूरी कर अर्थोपार्जन करता है । कुछ लोग कुटीर उद्योग धंधों को अपनी जीविका का साधन बनाए हैं । कोई लुहार का कार्य करता है, कोई बढ़ईगीरी, कोई मोची का कार्य करता है तो कोई कुम्हार का कार्य करके अपनी उदरपूर्ति में संलग्न है । तात्पर्य ये है कि भारत की जनसंख्या का एक विशाल भाग ग्रामों में निवास करता हुआ कृषि तथा कुटीर उद्योगधंधों पर अपना जीवन निर्वाह करता देखा गया है । किन्तु भारत की इसी अधिकांश जनता की आर्थिक स्थिति बड़ी ही दयनीय है । इस आर्थिक दुरावस्था का कारण सदैव से ग्रामों में व्याप्त बेकारी देखी जाती है - प्रथम मौसमी बेकारी जो प्रत्यक्ष कृषि से सबंधित है । कृषक जिस दिन फसल बोता है, काटता है उन दिनों तो वह कृषि कार्य में व्यस्त रहता है साथ ही कृषि में संलग्न मजदूर भी उसी समय कार्य में व्यस्त देखे जाते हैं । किन्तु फसल काटने तथा बोने के पश्चात् ये कृषक तथा मजदूर वर्ग अधिकांश महीनों में खाली ही रहते हैं । इन खाली दिनों में इनके पास न कोई काम होता है और न ही ये प्रयास करते हैं । ऐसी स्थिति में कृषक की आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न और अव्यवस्थित होती देखी जाती है । गांव में आर्थिक दुरावस्था आज ही नहीं स्वतंत्रता से पूर्व से रही है । दूसरी बेकारी जो गांवों में देखी जाती है

वह सामान्य बेकारी है जो किसी न किसी स्तर पर सभी देशों के ग्रामों में देखी जाती है यह सामान्य बेकारी है जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं दीख पड़ती । कृषि के लिए चाहे दो बीघे हो या बीस बीघे घर के समस्त सदस्य कृषि कार्य में ही लग जाते हैं जबकि कार्य एक-दो व्यक्तियों द्वारा भी किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में घर के अन्य सदस्य एक प्रकार से बेकारी का ही शिकार होते हैं । यदि वे कृषि को छोड़कर अन्य कार्य करने लगें तो गांवों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं ।

गांवों में आर्थिक दुरावस्था तथा बेकारी के प्रमुख कुछ कारण हैं जैसे - कृषि का केवल प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर होना, विदेशी शासन व्यवस्था में कुटीर उद्योग धंधों का विनाश, केवल कृषि पर ही आर्थिक दृष्टि से आश्रित होना, जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि आदि । स्वतंत्रता परवर्ती युग में गांवों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश-विभाजन तथा अन्य सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियों के कारण गांवों में निर्धनता तथा बेकारी में किसी प्रकार का सुधार संभव न हो सका तथा गांवों की आर्थिक स्थिति स्वतंत्रता के बाद भी काफी समय तक वैसी ही बनी रही । ग्रामीण जनता का जीवन सदैव अभावों से युक्त रहा है । न उनके तन के लिए उचित तथा पूर्ण वस्त्र थे, न खाने के लिए भर पेट भोजन तथा न रहने के लिए उचित मकान थे । सर्वत्र अभावों तथा बेकारी का साम्राज्य दिखाई देता है । भारतवर्ष की ग्राम्यव्यवस्था विशृंखलित हो चुकी थी । स्वतंत्रता से पूर्व भारत के ग्राम इकाई के रूप में थे । अंग्रेजी शासन काल में तो आर्थिक लाभ भारत को नहीं वरन् अंग्रेजों को ही होता था क्योंकि शासन के साथ व्यवसायिक उद्देश्य को लेकर भारत आये थे । आधुनिक यंत्रों के अभाव

के कारण उस समय कृषक परिश्रम अधिक करता था तथा उपज कम प्राप्त करता था । ब्रिटिश शासक भारत का उत्थान नहीं वरन् पतन करने के उद्देश्य से ही आये थे । अनजाने में उनसे चाहे जो भी उपकार हुए हों परन्तु उनकी प्रवृति भारत के लिए शुभाकांक्षी नहीं थी ।

राष्ट्रीय प्रगति में कृषि का महत्वपूर्ण योग होता है । स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति के कारण गांव में तीन वर्ग देखने में आये - प्रथम जमींदार, द्वितीय कृषक, तृतीय खेतिहर मजदूर जो दूसरों के खेतों में परिश्रम कर पारिश्रमिक प्राप्त करते थे । ब्रिटिश सरकार की नीति अंग्रेजी सरकार के पक्ष में थी उसमें इन्हीं का आर्थिक लाभ था । ब्रिटिश सरकार की नीति अंग्रेजी शासक के पक्ष में थी उसमें इन्हीं का आर्थिक लाभ था तथा भारत की आर्थिक स्थिति पतनोन्मुख होती जा रही थी । भारत का कुछ सम्पन्न वर्ग भी अपने स्वार्थों से वशीभूत होकर अंग्रेजों का ही साथ दे रहा था तथा उन्हें पनपाने के लिए अधिक से अधिक सुविधाएं देने को तैयार था । यह था जमींदार वर्ग पूंजीपति वर्ग तथा अधिकारी वर्ग । ब्रिटिश शासन का हित इनका हित था । ब्रिटिश शासन की उन्नति इनकी उन्नति थी । इन्होंने अपने भारतीय भाइयों का हित अपने स्वार्थों के समक्ष नगण्य था । ब्रिटिश आर्थिक नीति के कारण ग्रामीण लघु उद्योग विघटित होने लगे । लघु उद्योगों के विघटन के कारण ये कारीगर भी कृषि कार्य की ओर बढ़े । परिणाम स्वरूप कृषि पर अतिरिक्त भार बढ़ने लगा । गांव का एक बड़ा वर्ग वर्ष के अधिकांश समय बेकार रहने लगा । परिणाम स्वरूप गांव में निर्धनता के साथ साथ कर्ज का साम्राज्य ब्रिटिश सरकार को संबंधी व्यवस्था में कोई रुचि न थी । न सिंचाई की सुविधाएं कृषक को उपलब्ध थी न आधुनिक यंत्रों का प्रसार उस समय हो पाया था । विदेशी कच्चे माल के रूप

O,152,3,M80:g(Y,31) TH-1526
DISS
T52MS

में भारत की शक्ति का ह्रास करने में संलग्न थे । भारतीय गांवों की स्थिति निरन्तर निर्बल होती जा रही थी । स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी सरकार ने गांवों के विकास तथा कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया । विभिन्न सिंचाई योजनाएं बनाई । सामुदायिक विकास कार्यक्रम आयोजित किये गये, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, चकबन्दी आदि अनेक कार्य किये गये किन्तु ये सब योजनाएं तथा कार्यक्रम स्वतंत्रता के काफी समय बाद ही सम्पन्न हो सके क्योंकि स्वतंत्रता के तुरन्त बाद देश आर्थिक विश्रृंखलता की स्थिति में था जिसमें सुधारने के लिए उसे काफी समय लगा।

हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में मुंशी प्रेमचन्द का सर्वोच्च स्थान है । उन्होंने हिन्दी कहानी को न केवल कल्पना को आधारभूमि से उठाकर यथार्थ की धरती पर प्रतिष्ठित किया वरन् उसे वैचारिक और कलात्मक परिपक्वता की प्रदान की । प्रेमचन्द का युग हिन्दी कहानी के विकास का एक क्रांतिकारी युग है । प्रेमचन्द ने कहानी के क्षेत्र में बहुसंख्यक रचनाएं प्रस्तुत की । जिनके लगभग चालीस संग्रह प्रकाशित हुए हैं । प्रेमचन्द की कहानियों की कुल संख्या 275 के लगभग है । ये कहानियां जहां एक ओर भारतीय नागरिक जीवन के विभिन्न पक्षोंका निरूपण करती हैं । वहां दूसरी ओर ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों का भी समग्र रूपात्मक चित्र अंकित करती हैं । अपने रचनात्मक काल के आरम्भिक युग तथा विकास युग में प्रेमचन्द ने जो कहानियां लिखी हैं, वे मुख्यत: धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक विषय वस्तु पर आधारित हैं । इनमें से एक बड़ी संख्या ऐसी कहानियों की है जो भारतीय ग्राम जीवन का बहुरूपी चित्रण करती हैं । "पंचपरमेश्वर," "पूस की रात," "समर यात्रा," "लाग-डाट," "खून सफेद," "दो बैलों की कथा," "अग्नि समाधि," "मुक्ति मार्ग," "मुक्तिधन," "कफन," "अलग्योझा," "सवासेर गेहूं," "पछतावा,"

"सुजानभगत," "रियासत का दीवान," तथा "उपदेश" आदि इसी कोटि की कहानियां हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य से संबंधित बहुसंख्यक शोध-प्रबन्ध अब तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के तत्त्वावधान में लिखे जा चुके हैं। प्रेमचन्द की कहानी कला से संबंधित कतिपय ग्रंथ भी प्रकाश में आये हैं। इनमें प्रेमचन्द की कहानी साहित्य का साहित्यिक एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है। परन्तु अभी तक ऐसा कोई स्वतंत्र प्रकाशित नहीं हुआ है जिसमें प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में चित्रित ग्रामजीवन का समग्र रूपात्मक अध्ययन किया गया हो। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पहली बार प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में चित्रित जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि पक्षों का पृथक-पृथक अध्यायों में स्वतंत्र रूप में अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन प्रेमचन्द के ग्राम जीवन दर्शन की व्यंजना करने में भी समर्थ है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अपने विषय की सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है। इससे न केवल इस क्षेत्र में एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी, वरन् प्रेमचन्द के कहानी साहित्य के अध्ययन की एक नई दिशा भी दृष्टिगत होगी।

...

द्वितीय अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का सामाजिक पक्ष

प्रेमचन्द की कहानियों में ग्राम्य जीवन का सामाजिक पक्ष

प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष का जो चित्रण हुआ है, उसका आधार बीसवीं शताब्दी के प्रथम चार दशकों का भारत है। इसमें से भी प्रमुख रूप से प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य का भारतीय समाज प्रेमचन्द की कहानियों में अपनी समग्र रूपात्मक विशेषताओं के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है। प्रेमचन्द ने व्यक्ति को एक इकाई के रूप में समाज के गठन का आधार स्वीकार किया है क्यों कि व्यक्ति ही परिवार और समाज का निर्माता है। प्रेमचन्द के सामाजिक चित्रण की सबसे बड़ी विशेषताएं हैं कि उन्होंने भारतीय समाज विशेष रूप से भारतीय ग्रामीण समाज को रूढ़िप्रिय इंगित किया है। उनका यह निश्चित मंतव्य है कि भारत का ग्रामीण समाज अपरिवर्तनशील रहा है। युग जीवन की क्रांतियों, आन्दोलनों और परिवर्तनों ने उसे बहुत कम प्रभावित किया है। समाज को अखंडता तभी बाधित हुई है, जब संयुक्त परिवार की प्रथा का विश्रृंखलन हुआ। प्रेमचन्द की यह मान्यता है कि संयुक्त परिवार ग्रामीण समाज की नींव थे, और उन्होंने ही बिरादरी के नियम भी बनाये थे जो मूलत: नैतिक मूल्यों से नियंत्रित व निर्धारित होते थे।[1] प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित ग्राम्य जीवन के सामाजिक पक्ष का जो अध्ययन किया जा रहा है, उसका आधार, बहुसंख्यक सूत्र है। इसके अन्तर्गत संयुक्त परिवार की प्रथा का विश्रृंखलन, एकाकी परिवार की प्रथा का उद्भव, नारी जीवन की समस्याएं, वैवाहिक समस्यायें, रूढ़िवादी परम्पराएं पशु तथा कृषि जीवन की समस्याएं, स्वास्थ्य

---

1. "प्रेमचन्द," : "एक विवेचन," इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 129

तथा शिक्षा की समस्याएं आदि प्रमुख हैं । यहां पर इन्हीं प्रमुख सूत्रों के आधार पर प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

"प्रेमचन्द के युग में सदियों से चला आता हुआ संयुक्त परिवार टूट रहा था । अब एक नई तरह का परिवार ही बन सकता था जिसमें सभी मेहनत करने वाले हों और सभी का दर्जा बराबरी का हो । अंग्रेजी राज के शोषण चक्र में पुराना ढांचा तो टूट रहा था लेकिन नया न बन पा रहा था जिसमें सभी को काम मिले और सभी समानता और सुख के साथ पारिवारिक जीवन बिता सकें ।[1] गांधी में संयुक्त परिवार प्रथा के टूटने का कारण स्वार्थपरता का बीजारोपण, पारस्परिक फूट तथा वैमनस्य था । अलग्योझे की स्थिति का कारण आपसी द्वेष तथा वैमनस्य का बीजारोपण है जिसको अंकुरित करने में स्त्रियों का प्रमुख हाथ रहता है । केदार तथा माधव को अलग कराने का कारण प्रमुख रूप से धम्पा तथा श्यामा थी । माधव के चार लड़के तथा लड़कियां थीं, केदार निःसन्तान था । माधव को सम्पत्ति की लालसा थी, केदार को सन्तान की अभिलाषा । भाग्य की इस कूटनीति ने शनैः शनैः द्वेष का रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था माधव की बहू श्यामा अपने लड़के को संवारने सुधारने में लगी रहती, धम्पा को चूल्हे चक्की में जलना और पिसना पड़ता । धम्पा को सन्तान के अभाव तथा कार्य के भार ने विद्रोही बना दिया । यहां तक कि द्वेष का प्याला लबालब भर गया । धम्पा और श्यामा समकोण बनाने वाली रेखाओं की भांति अलग हो गई । उस दिन एक ही घर में दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयों ने दाने को

---

1. "प्रेमचन्द और उनका युग," डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ 122

सूरत न देखी । माता कलावती का तो सारा दिन ही रोते व्यतीत हुआ ।[1] दोनों भाई जो एक समय माता की एक ही पालथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते थे और एक ही छाती से दूध पीते थे, अब उन्हें एक घर में, एक गाँव में रहना कठिन हो गया । किन्तु सामाजिक मर्यादा के निर्वाह के लिए कुल की साख को बचाये रखने का असफल प्रयत्न किया जाता । आपसी ईर्ष्या और द्वेष की धधकती हुई आग को राख के नीचे बढ़ाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती । उन दो में आग को राख के नीचे बढ़ाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती । उन दो में अब भ्रातृस्नेह न था । केवल भाई के नाम की लाज थी । माँ भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती थी । हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान न था । कुसुम वहीं था, परन्तु वह छटा न थी ।[2]

इस प्रकार संयुक्त परिवार की प्रथा जहाँ पहले पारस्परिक स्नेह की प्रतीक बनी हुई थी, वहाँ इसमें पारस्परिक फूट तथा द्वेष की भावना को जन्म देना प्रारम्भ कर दिया था । संयुक्त परिवार में स्त्री-वर्ग में सास को सत्ता प्राप्त होती थी तथा पुरुष वर्ग में लड़के के पिता या पुत्र वधुओं के श्वसुर का एक क्षण राज्य होता था । किन्तु जहाँ सासका अभाव होता था, वहाँ द्वेष का बीजारोपण देवरानी तथा जेठानी वर्ग में अतिशीघ्र हो जाता था । ऐसी परिस्थितियों में देवरानियाँ जेठानी को सर्वसत्ता प्राप्त देखना पसन्द न करती थीं । इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी इससे किसी प्रकार अछूत न रह सका । भाई-भाई में आपस में अलग्योझा के समय मारपीट तक की नौबत आ पहुंचती थी । आपसी द्वेष की एक ऐसी दीवार खड़ी हो जाती जो स्नेह के प्रवाह को रोक देती । संयुक्त परिवार में सभी के समानाधिकार तथासमान कर्तव्य होते थे तथा प्रत्येक व्यक्ति का परिस्थिति-

---

1. "दो भाई," (मानसरोवर, सातवाँ भाग), पृष्ठ 216
2. "दो भाई," (मानसरोवर, सातवाँ भाग), पृष्ठ 216

नुसार उत्तरदायित्व होता । यदि विभाजन में थोड़ी सी भी असमानता होती तो स्थिति अधिक विद्रोहात्मक रूप धारण कर लेती । "अलग्योझा" कहानी में मुलिया यह सहन नहीं कर पाती कि उसका पति रग्घू सारे दिन खेतों में कार्य करे तथा उसके छोटे भाई बिना काम किये ही मुफ्त की रोटियाँ खायें, पढ़े-लिखें तथा खेल-कूद कर आनन्द से जीवन व्यतीत करे । वह नहीं सहनकर पाती कि रग्घू को कमाई उसके भाई खाएं और मूछों को ताव दें । किन्तु कहीं कहीं परिवार विभाजन का आघात भाइयों के हृदय में खटाई चिन्ह भी छोड़ जाता जो समय-समय पर उनके हृदय को मर्मान्त पीड़ा देता । रग्घू का हर संभव प्रयास यही है कि उनकी पत्नी मुलिया अलग्योझे का प्रस्ताव न रखे । किन्तु मुलिया का यह कठोर प्रहार रग्घू पर करती हुई कहती है - "अब तो तभी मुंह में पानी डालूंगी, जब घर अलग हो जायेगा ।"[1] किन्तु मुलिया उसके वाक्य बाण से आहत-सा हो जाता है उसने अपने छोटे भाईयों से अलग होने की कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी । उसने गांव में दो-चार परिवारों को अलग होते देखा था । वह खूब जानता था, रोटी के साथ लोगों के हृदय भी अलग हो जाते हैं । अपने लमेरा के लिए गैर हो जाते हैं । फिर उनमें वही नाता रह जाता है जो गांव के अन्य आदमियों में । रग्घू ने मन में ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर में न आने दूंगा लेकिन होनहार के सामने उसकी एक न चली । मुलिया अलग्योझे के लिए कृतसंकल्प थी । रग्घू हार गया । उसके मुंह पर अलग्योझे की कालिख लग ही गई ।

---

1. "अलग्योझा;" (मानसरोवर, प्रथम भाग), पृष्ठ 20
2. "अलग्योझा;" "मानसरोवर, प्रथम भाग), पृष्ठ 21

उसका हृदय कराह उठा, "दुनिया क्या कहेगी कि बाप के मरने के पश्चात् दस साल भी एक में निर्वाह न हो सका । फिर किससे अलग हो जाऊं ? जिनको गोद में खिलाया जिनको बच्चों की तरह पाला, जिनके लिए तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्हीं से अलग हो जाऊं । अपने प्यारों को घर से निकाल बाहर करूं ? उसका गला फंस गया । कांपते हुए स्वर में मुलिया से बोला - तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयों से अलग हो जाऊं ? भला सोच तो कहीं मुंह दिखाने लायक न रहूंगा । मैं अपने घर से अलग नहीं हो सकता । जिस दिन इस घर में दो चूल्हे अलग, जलेंगे उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकड़े हो जायेंगे ।[1] जहां मिल जुल कर खाना पीना, उठना बैठना होता था वहीं अब सूनापन दृष्टिगत होने लगा । रग्घू के आंगन में दीवार खिंच गई, खेतों में मेंड़े डाल दी गई और बैल बधिये बांट लिये गये थे । इस प्रकार मुलिया की वैयक्तिक स्वार्थपरता तथा वैमनस्य की भावना तथा अदूरदर्शिता ने अलग्योझा करवा ही दिया ।

ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति

भारतीय समाज में प्राचीन परम्पराएं तथा लोक प्रथाएं पूर्ववत विद्यमान थीं । स्त्री को केवल भोग विलास की सामग्री तथा चौकीदारिनी ही समझा जाता था । सामाजिक लोकप्रथा के अनुसार अभागिनी कन्याओं को किसी न किसी पुरुष के गले बांध देना अनिवार्य समझा जाता था । वृद्ध विवाह तथा विधवा विवाह दोनों ही ग्रामों में प्रचलित थे किन्तु इन्हें समाज में विशेष आदर न दिया जाता था । विधवा विवाह भी केवल निम्नजातियों तक ही प्रचलित था । ग्रामीण समाज में अनमेल विवाह अधिकांशतः पैसे के अभाव के कारण सम्पन्न हो जाते थे । समाज इस ओर

---

1. "अलग्योझा," (मानसरोवर, प्रथम भाग), पृष्ठ 21

ध्यान देना अनिवार्य ही नहीं समझता था कि कितनी युवतियाँ इस लोकप्रथा के नाम को रो रही हैं । अनेक युवतियों की अभिलाषाओं से लहराते हुए कोमल हृदय उनके पैरों के नीचे रौंदे जा रहे हैं । पुरुष वर्ग के लिए प्रमुखवस्तु सम्पत्ति तथा यौन सम्बन्धी ही है । सम्पत्ति की सुरक्षा तथा यौन तृप्ति के निर्मित ही नारी का अस्तित्व है । स्त्रियों का भाग्य उसी पक्षी से अधिक न था जो एक सूने पिंजरे की शोभा बढ़ाता है । किन्तु पिंजरे में रहकर उसका अपना व्यक्तित्व तथा अस्तित्व मालिक के हाथों में ही बनता-बिगड़ता है । उसको किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती । ठीक यही स्थिति भारतीय समाज में नारी की थी घर रूपी पिंजरे में रहकर नारी का व्यक्तित्व पुरुष के हाथों बनता बिगड़ता था । विवाह नारी के लिए कारावास तुल्य था ।[1]

"भारतीय किसान पुरुष प्रधान समाज में रहता है जिसमें नारी की भूमिका गौण होती है । फिर भी मध्य वर्गीय नारी की अपेक्षा किसान की पत्नी की स्थिति ज्यादा बेहतर है । वह उत्पादन में सक्रिय हिस्सा लेती है और इस कारणउसे घर के मामले में बोलने की स्वतंत्रता होती है । किसान संयुक्त परिवार में विश्वास करता है । प्रेमचन्द की रचनाओं में दिखाया गया है कि नारी संयुक्त परिवार का विरोध करती है । विशेष रूप से नयी बहुएं इस व्यवस्था में रहना पसन्द नहीं करतीं ।"[2] ग्रामीण समाज में तो उसकी स्थिति और भी दयनीय थी । उसके ऊपर केवल पति ही नहीं सास, ननद, जेठानी और घर के समस्त बड़े सदस्यों का दबदबा होता । समाज द्वारा नारी पर ऐसे अत्याचार किये जाते,जिससे स्त्रियों को अपनी जिंदगी पहाड़ मालूम होने लगती थी ।

---

1. "नरक का मार्ग," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 26-27
2. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान," डा० रामरक्षा, पृष्ठ 227

पारिवारिक सदस्यों द्वारा किये गये अत्याचारों से नारी के हृदय को कितनी वेदना होती है इसको जानना असम्भव है । स्त्रियों का जीवन भार हो जाता है । हृदय जर्जर हो जाता है तथा समाज द्वारा नियंत्रित स्त्रियों की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है जैसे, जल, प्रकाश और वायु के बिना पौधे सूख जाते हैं ।[1] ग्रामीण समाज में स्त्रियों पर हाथ उठाना सामान्य घटना समझी जाती है । घर का समस्त कार्य यहाँ तक कि बाहर के खेती बाड़ी के कार्य में भी स्त्री-पुरुष को पूर्ण सहयोग देती । किन्तु पति-पत्नी के स्वाभाविक संबंधों में यदा-कदा परिस्थितियाँ कड़वाहट घोल देती । "अभिलाषा" कहानी में पानवाला अपनी पत्नी को सब के सामने मारता है । पानवाले की स्त्री दुकान पर रात-दिन बैठी सती होती थी । पुरुष तो मटरगश्ती किया करता था । रात के दस ग्यारह बजे तक दुकान पर बैठती तथा प्रातःकाल भोर होते ही पुनः दुकान पर आ बैठती । घर का समस्त कार्य करती तथा साथ ही दुकान का भी पूर्ण कार्य संयोजित करती । नोच-खटोच काट-कपट जितना पुरुष करता था, उससे कुछ अधिक ही स्त्री करती थी पर पुरुष सब कुछ है, स्त्री कुछ नहीं । पुरुष जब चाहे उसे निकाल बाहर कर सकता है । पुरुष स्त्री पर अनेक अत्याचार करता किन्तु उसे लेशमात्र भी दया नहीं आती । बेचारी केवल अश्रु प्रवाह से ही अपने मन को हल्का कर लेती । हाय री हृदयहीनता । अबला स्त्री के प्रति पुरुष का यह अत्याचार । एक दिन इसी स्त्री पर उसने प्राण दिये होंगे, उसका मुंह जोहता रहा होगा । पर पुरुषत्व के मदान्ध में वह इतना अन्धा हो गया कि उसे नारी पर दया भी नहीं आती ।

---

1. "शान्ति," (मानसरोवर, सातवाँ भाग), पृष्ठ 84

अनमेल विवाह

ग्राम्य समाज में विवाह भाग्य की बात समझा जाता था, कन्या के भाग्य के अनुसार ही उसको सुपात्र अथवा कुपात्र वर प्राप्त होता है। इसमें माता-पिता को अधिक छानबीन करने की आवश्यकता नहीं। "शादी विवाह में आदमी का क्या अख्तियार। जिससे ईश्वर ने, या उनके नायकों ने ब्राह्मणों ने तय कर दिया उससे हो गई।"[1] कन्या के लिए वर तो उसके जन्म के साथ ही ईश्वर निर्मित कर देता है। अत: लग्न के अनुसार उसे वही वर स्वयं ही प्राप्त हो जाएगा जो उसके लिए निर्मित है।" "नरक का मार्ग" कहानी की नायिका अपने अनमेल विवाह के कारण अनेक घुण्ठाओं से ग्रस्त है उसका हृदय विद्रोह कर उठता है। बूढ़े पति से वह जो प्रेम प्राप्त नहीं कर पाती जिसको वह अपने हृदय में संजोये है। उसके हृदय में अंतर्द्वन्द्व उठता है तथा वह स्वयं से कहती है - "भगवान। मैं अपने मन को कैसे समझाऊं। तुम अंतर्यामी हो, तुम मेरे रोम-रोम का हाल जानते हो। मैं चाहती हूं कि उन्हें अपना ईष्ट समझूं, उनके चरणों की सेवा करू, उनके इशारे पर चलूं, उन्हें मेरी किसी बात से किसी व्यवहार से लेशमात्र भी दु:ख न हो। वह निर्दोष हैं, जो कुछ मेरे भाग्य में था वही हुआ, न उनका दोष है, न माता-पिता का, सारा दोष मेरे नसीबों का है। लेकिन यह सब जानते हुए भी जब उन्हें आते जाते देखती हूं तो दिल बैठ जाता है, मुंह पर मुर्दनी सी छा जाती है, सिर भारी हो जाता है। जो चाहता है कि इनकी सूरत न देखूं। बात तक करने को जी नहीं चाहता। कदाचित शत्रु को भी देखकर किसी का मन इतना क्लान्त न होता होगा।[2] वास्तव में बूढ़ों से विवाहित सभी स्त्रियों

---

1. "स्वर्ग की देवी," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 62
2. "नरक का मार्ग," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 23

के हृदय की यही दशा होती है ।

ऐसे अनमेल विवाह का परिणाम यह होता है कि "नरक का मार्ग" कहानी की नायिका अपने बूढ़े पति की बीमारी तथा मृत्यु पर शोक नहीं मानती वह वज्र हृदय हो जाती है, नारी हृदय की समस्त कोमलता समाप्त हो जाती है । पति की बीमारी से उसे एक प्रकार का ईर्ष्यामय आनन्द होता है । उसका विद्रोही हृदय कराह कर पुकार उठता है - "मैं इसे विवाह को पवित्र नाम नहीं देना चाहती - यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूं कि जिससे मुझे कैद में डाल रखा हो उसकी पूजा करूं, जो मुझे लात से मारे उसके पैरों को चूमूं । मुझे तो मालूम हो रहा है कि ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे हैं । मैं निःसंकोच होकर कहती हूं कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ । स्त्री किसके गले बांध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती । वही संयोग विवाह का पद पा सकता है । जिसमें कम से कम एक बार तो हृदय से प्रेम पुलकित हो जाये ।"[1]

प्रेमचन्द "उद्धार" शीर्षक कहानी में भी इस अनमेल विवाह पद्धति पर चिन्तित दिखाई पड़ते हैं । "उद्धार" कहानी की प्रारम्भिक पंक्तियों में ही अनमेल विवाह की दूषित प्रथा पर प्रहार करते हुए लिखा है कि "हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी "दूषित" इतनी चिन्ताजनक इतनी भयानक हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्यों कर हो ।[2] दबाव, धार्मिक रुढ़ियों, आर्थिक विवशता, मर्यादा की रक्षा, जाति-पांति के भेदभाव आदि बालिका के जन्मगत आचार-विचार, स्वभाव तथा आयु से विषम अन्तरिक्त लड़के की योग्यता, अयोग्यता का विचार किये बिना, अपनी प्राचीन परम्परागत रुढ़ियों तथा धारणाओं के अनुसार अयोग्य लड़के

---

1. "नरक का मार्ग," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 26
2. "उद्धार," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 38

से कन्या का विवाह कर दिया जाता है जिसे प्रेमचन्द ने उचित नहीं माना है। कन्या को भारस्वरूप मानना उसके साथ अन्याय करना है। आगे प्रेमचन्द ने "उद्धार" शीर्षक कहानी में लिखा है - "क्या यह विवाह है? कदापि नहीं। यह तो लड़की को कुएं में डालना है, भाड़ में झोंकना है, कुन्द छुरे से रेतना है। कोई यातना इतनी दुस्सह, इतनी हृदयविदारक नहीं हो सकती जितनी वैधव्य। ये लोग जानबूझकर अपनी पुत्री को वैधव्य के अग्नि कुण्ड में डाल देते हैं। क्या माता-पिता हैं? कदापि नहीं। यह लड़की के शत्रु हैं। कसाई हैं। बधिक हैं। हत्यारे हैं। क्या इनके लिए दण्ड नहीं? जो जानबूझकर अपनी प्रिय सन्तान के खून से अपने हाथ रंगते हैं, उनके लिए कोई दण्ड नहीं? समाज भी उन्हें दण्ड नहीं देता, कोई कुछ नहीं कहता। हाय।[1] "शांति" और "कुसुम" कहानियों में भी प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह परम्परा का दमन किया है। "शांति" कहानी की गोपा की पुत्री सुन्नी का विवाह उसके विपरीत आचार-विचारों के लड़के केदार से सम्पन्न कर दिया जाता है जिसका अन्त दुखांत होता है। सुन्नी अपने प्राण दे देती है तथा केदार घर छोड़कर कहीं चला जाता है। प्रेमचन्द ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - धन के लोभ में दो अलग अवस्थाओं और विचारों के लोगों को एक बंधन में बांधना अनुचित है। इसी प्रकार प्रेमचन्द ने "नैराश्य लीला" कहानी में भी अनमेल विवाह का विरोध किया है।

बाल विवाह एवं विधवा समस्या

प्रेमचन्द ने ग्रामीण समाज में परिव्याप्त बाल-विवाह एवं विधवा विवाह समस्या को भी अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया है, प्रेमचन्द युग में ग्रामों में विशेष रूप से कन्याओं के धन विवाह करने की प्रथा थी। जो व्यक्ति अपनी कन्या का धर्म विवाह कर देता है, उसे

---

1. "उद्धार," (मानसरोवर, तीसरा भाग), पृष्ठ 45

समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है । "तेरह वर्ष की कन्या" युवा समझी जाती थी तथा उसका शीघ्रातिशीघ्र विवाह आवश्यक समझा जाता था । पंडित हृदयनाथ भी यद्यपि सम्मानित तथा शिक्षित व्यक्ति थे किन्तु वे भी इस दुष्परम्परा के शिकार हो गये । उनकी एकमात्र कन्या कैलाश कुमारी का विवाह भी तेरहवें वर्ष में हो गया था और माता-पिता की अब यही लालसा थी कि भगवान उसे पुत्रवती करे तो हम लोग नवासे के नाम अपना सब कुछ लिखा-लिखाकर निश्चित हो जायें ।[1] कम उम्र की कन्या यह भी नहीं समझ पाती थी कि विवाह का आशय क्या है, वर क्या है तथा ससुराल किसे कहते हैं । छोटी-छोटी कन्याओं को जबरन डोली में बैठा कर ससुराल भेजदिया जाता था तथा पति से संयोग कराये बिना उन्हें वापस मायके ले आया जाता था । चूंकि कन्याओं की आयु विवाह योग्य नहीं होती थी अत: उनको गौने की अवधि काफी लम्बी रखी जाती थी । वधू अपने पति का मुख नहीं देख पाती थी मिलन तो बहुत दूर की बात थी । पति संयोग गौने के पश्चात् ही सम्भव हो पाता था ।

पण्डित हृदयनाथ अपनी पुत्री के लिए मनोरंजन के साधन जुटाने में व्यस्त थे, तो समाज उनकी कटु आलोचना करने में व्यस्त था । ग्रामीण वृद्धा हृदयनाथ की पुत्री पर व्यंग्य करती हुई कहती है - "यह भी कोई दिल है कि घर में चाहे आग लग जाय, दुनिया में कितना ही उपहास हो लेकिन आदमी अपने राग-रंग में मस्त रहे । वह दिल है कि पत्थर । हम गृहणियां कहलाती हैं, हमारा काम है अपनी गृहस्थी में रत रहना, आमोद-प्रमोद में दिन काटना नहीं । ऐसे व्यंग्य मान हृदय पर वज्राघात करने से न चूकते । अन्त में पण्डित हृदयनाथ को विवश होकर अपनी विधवा कन्या के सुख ऐश्वर्य तथा मनोरंजन पर रोक लगानी ही पड़ी । विधवा कैलाश कुमारी

---

1. "नैराश्य लीला," (मानसरोवर तीसरा भाग), पृष्ठ 54

स्वाध्याय, संयम, उपासना तथा धर्मग्रन्थों में रत रहने लगी । कुछ समय पश्चात् कैलाश कुमारी की धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हो गई कि अन्य प्राणियों से वह पृथक रहने लगी, किसी को न छूती महरियों से दूर रहती । सहेलियों से गले तक न मिलती, दिन में दो-दो, तीन तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई न कोई धर्मग्रन्थ पढ़ा करती । साधु महात्मा के सेवा सत्कार में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता । जहां किसी महात्मा के आने की खबर सुनती तो उसके दर्शनों के लिए विकल हो जाती । ... मन संसार से विरक्त होने लगा । तल्लीनता की अवस्था प्राप्त हो गई । घण्टों ध्यान और चिन्तन में मग्न रहती । सामाजिक बन्धनों से घृणा हो गई । यहां तक कि तीन ही बरस में उसने सन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया ।[1]

धिक्कार कहानी में भी प्रेमचन्द ने मानी के माध्यम से विधवाओं की दुरवस्था का यथार्थ तथा सजीव चित्रण किया है । मानी को पति की मृत्यु के पश्चात् रोने के सिवा दूसरा अवलम्ब न था । विवाह के एक वर्ष के अन्दर ही मानी अपनेपति तथा माता से शून्य हो गई । उसका सुहाग लुट गया । उसका समस्त सुख ऐश्वर्य विलीन हो गया । विधवाओं को समाज से दुर्व्यवहार ही मिलता है सदव्यवहार की तो उसे समाज से आशा ही नहीं करनी चाहिये । मानी को अपना वैधव्य चाचा के यहां कठिन परिस्थितियों में व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा । मानी चाचा के यहां रहने लगी किन्तु दो-चार महीने में ही मानी को मालूम हो गया कि इस घर में बहुत दिनों तक उसका निर्वाह न होगा । वह घर का सारा काम करती, इशारों पर नाचती सबको खुश करने की कोशिश करती, पर न जाने क्यों चाचा और चाची दोनों उससे जलते रहते । उसके आते ही महरी अलग कर दी गई । नहलाने-धुलाने के लिए एक लौंडा था उसे भी जवाब दे दिया गया, पर मानी से इतना उबार होने पर भी चाचा और चाची न जाने उससे मुंह फुलाये रहते, कभी चाचा घुड़कियां जमाते कभी चाची कोसती, यहां तक कि उसकी बहन ललिता भी बात बात पर उसे गालियां देती ।[2]

---

1. "नैराश्य लीला" [मानसरोवर तीसरा भाग] पृष्ठ- 60.
2. "धिक्कार" [मानसरोवर, प्रथम भाग] पृष्ठ- 209.

भारतीय समाज में विधवाओं का कष्टकारण जीवन ही प्रेमचन्द की कला का आधार बनकर कहानियों में साकार हो उठा है। प्रेमचन्द ग्राम्य समाज में व्याप्त नारी की विभिन्न जीवन की अवस्थाओं के प्रति पूर्णतया जागरूक रहे हैं। विधवाओं की विवशता से परिपूर्ण सामाजिक स्थिति का उन्होंने बड़ा ही करुण चित्रण किया है। प्रेमचन्द को विधवाओं के कर्तव्य, अधिकार विवशता तथा समाज से प्राप्त होनावस्था का उन्हें पूर्ण ज्ञान था, जिसे उन्होंने अपने साहित्य में स्थान-स्थान पर प्रकट किया है। पति की मृत्यु के पश्चात् समाज किस प्रकार उनके हाथों से एक-एक अधिकार को छीन कर उन्हें बेबस बना देता है। तथा घर के समस्त सदस्य किस प्रकार उसकी उपेक्षा करने लगते हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें "बेटों वाली विधवा" शीर्षक कहानी में मिलता है। पण्डित अयोध्या नाथ की उपस्थिति में फूलमती की इच्छा तथा आज्ञा के बिना एक पत्ता भी न हिलता था। चालीस वर्ष की अवधि में फूलमती की बात सर्वमान्य रहती थी। यहाँ तक कि पण्डित अयोध्यानाथ भी अपनी पत्नी के कार्य में हस्तक्षेप न करते। किन्तु पण्डित जी की मृत्यु के पश्चात् उसकी वह हैसियत न रही जो पण्डित जी के जीवित रहने पर थी। फूलमती से जमीन जायदाद, रुपये तथा गहने सभी उसके चारों बेटों ने छीन लिये। वह अपने ही एकत्र किये रुपये अपनी इच्छा से खर्च नहीं कर सकती। फूलमती का पुत्र कामतानाथ कहता है — "अम्मा तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं हैं, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ खर्च नहीं कर सकती हो। वह अब तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गये हैं। दादा के मरते ही हमारे हो गये। आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नहीं।[1] कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी कपड़े का है।[2] पूर्व मालिकिन फूलमती अपने चारों बेटों बहुओं की लौंडी की तरह रहने लगी, जो तिरस्कार घर का कामकाज करती, अब उसके मुख पर गौरव की जगह गहन वेदना झलकती थी। फूलमती का बड़ा हवादार कमरा भी छीनी कराकर बड़ी बहु को दे दिया गया। उसे छोटी

---

1. "बेटों वाली विधवा", मानसरोवर, प्रथम भाग, पृष्ठ- 81,82
2. "बेटों वाली विधवा", मानसरोवर, प्रथम भाग, पृ0- 82

सी कोठरी में भिखारिन की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ा । विधवा का काम केवल पशुओं की तरह काम करना और खाना रह गया । जानवर मारने से काम करता है, पर खाता है मन से । फूलमती वे कड़े काम करती थी, पर खाती थी विष के कौर के समान । महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं रही, चेतना शून्य हो गयी ।[1] इसी प्रकार "माँ" कहानी में अनेक आशाओं से पालित पुत्र के उच्छृंखल हो जाने पर माता करुणादेवी का हृदय हाहाकार कर उठता है । वह अपने पुत्र प्रकाश का उपेक्षा पूर्ण व्यवहार नहीं सहन कर पाती ।

"धिक्कार" कहानी में मानी तो पराश्रिता के कारण "नैराश्य लीला" की कैलासी से भी अधिक दुखभरी है । भारतीय समाज में विधवाओं की छाया को भी अशुभ समझा जाता है । उन्हें शुभ कार्यों में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त न था । ऐसे अवसर पर उन्हें कहीं देख भी लिया जाता तो इन्हें लोगों की झिड़कियाँ ही मिलती । "धिक्कार" कहानी की मानी अपनी चाची से उस समय झिड़कियाँ खाती है जब वह अपनी चचेरी बहन के पहनाव का सामान देखने के लिए जाती है तो सहसा उसकी चाची ने झिड़ककर कहा -- "तुझे यहाँ किसने बुलाया था, निकल जा यहाँ से ।[2] सुहागिनों के मध्य विधवा का आगमन अशुभ माना जाता था । मानी अपने चाचा के चरणस्पर्श करती है तो उसके चाचा तिरस्कृत भाव से कहते हैं-- "मुझे मत छू, दूर रह अभागिनी कहीं की ।" वह पीछे हट गये और आँखें निकालकर कहा । अन्त में मानी समाज के उपेक्षित व्यवहार से निराश होकर अपने प्राण दे देती है ।

प्रेमचन्द की ये हार्दिक इच्छा रही है कि विधवाओं का समाज में उद्धार हो । विधवा अगर नैतिक रूप से विधवा का ही जीवन बिताये तो उसे लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और यदि वह विवाह कर लेती है तो उसे कोई बुरा नहीं बताता । इस तरह प्रेमचन्द ने दिखाया है कि किसानों में पुरुष व स्त्री दोनों को समान रूप से दूसरी शादी करने का अधिकार है ।[3]

---

1. "बेटे वाली विधवा" [मानसरोवर, प्रथम भाग] पृ0- 87
2. "धिक्कार" [मानसरोवर, प्रथम भाग] पृ0-210
3. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान" -- डा0 रामबक्श, पृष्ठ- 233

इसके लिए उन्होंने विधवा पुनर्विवाह को स्वीकारा है । साथ ही प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में ऐसी विधवाओं की भी सृष्टि की है जो समाज में साहसपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें । "मृतक भोज"[1]की सुशीला तथा "ईश्वरीय न्याय" की भानु कुमारी के रूप में ऐसी विधवाओं की कल्पना करनी चाही है, जो अपने साहसपूर्ण आदर्श की स्थापना करे, "शांति"[2] की गोपा, "माता का हृदय"[3] की माधवी, "मन्दिर" की सुहिया, "शराब की दुकान"[4] की मिसेज़ सक्सेना तथा "विध्वंस"[5] कहानी की भुगनी ऐसी साहसी विधवाएं हैं जिन्होंने जीवन के कर्मक्षेत्र में उतर कर स्वावलम्बी बन जीवन यापन किया । "स्वामिनी"[6] की रामप्यारी तथा "मां"[7] कहानी की करुणा भी साहसपूर्ण व वैधव्य जीवन व्यतीत कर देती है । "सुभागी"[8] शीर्षक कहानी की नायिका सुभागी ग्यारह वर्ष की आयु में विधवा हो जाती है उससे हरिहर तथा उसके पिता दूसरा घर करने को कहते हैं । यहां तक कि उसकी भाभी भी अपने विषाक्त व वाक्य प्रहार से नहीं चूकती तथा सुभागी को दूसरा घर करने चले जाने को कहती है किन्तु सुभागी सगर्व स्वर में कहती है —"चाचा, मैं तुम्हारी बात समझ रही हूँ, लेकिन मेरा मन घर करने को नहीं कहता । मुझे आराम की चिन्ता नहीं है । मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ और जो काम तुम कहो वह सिर आंखों के बल करूंगी मगर घर करने को मुझसे मत कहो । जब मेरी चाल कुचाल देखना तो मेरा सिर काट लेना । अगर मैं सच्चे बाप की बेटी हूंगी तो बात की भी पक्की हूंगी ।" आगे भाभी के व्यंग्यपूर्ण व्यवहार का प्रति उत्तर देती हुई कहती है —" भाभी मैं तो कभी मरूंगी नहीं । तुम अपनी चिन्ता न करो ।" सुभागी भाई के द्वारा बंटवारा करने पर मां बाप को लेकर अलग रहती है तथा दिन-रात परिश्रम करके अपने माता-पिता

---

1. "मृतक भोज"‖मानसरोवर, चौथा भाग‖ पृष्ठ- 155
2. "शान्ति"‖मानसरोवर प्रथम भाग‖ पृ0- 98
3. "माता का हृदय"‖मानसरोवर,तीसरा भाग‖ पृ0-95
4. "शराब की दुकान"‖मानसरोवर, सातवां भाग‖ पृ0-30
5. "विध्वंस"‖मानसरोवर, आठवां भाग‖ पृ0-183
6. "स्वामिनी" ‖मानसरोवर,प्रथम भाग‖ पृ0-121
7. "मां" ‖मानसरोवर,प्रथम भाग‖ पृ0- 49
8. "सुभागी" ‖मानसरोवर, प्रथम भाग‖ पृ0- 262

को वो समस्त सुख देती है जो उसका भाई मर्द होकर न दे सका । "गाँव में जहाँ देखो सबके मुंह से सुभागी की तारीफ । लड़की नहीं देवी है । दो मर्दों का काम भी करती है, ऊपर माँ-बाप की सेवा भी किये जाती है । सजनसिंह तो कहते हैं यह उस जन्म की देवी है ।" वास्तव में भारतीयनारी अबला है । प्रेमचन्द नारी को पूर्ण सामर्थवान देखना चाहते थे इसलिए उनकी सुभागी सगर्व कहती है -- "मैं भईया को दिखा देना चाहती हूँ कि अबला क्या कर सकती है । यह समझते होंगे कि इन दोनों के लिए कुछ न होगा । उनका यह घमण्ड तोड़ दूंगी ।" प्रेमचन्द चाहते थे कि नारी में इतनी शक्ति हो कि वह पति की मृत्यु के पश्चात् भी अपने जीवन स्त्रोत को निरन्तर प्रवाहित करती रहे, अपने बुद्धिबल को बनाये रखे । यही बुद्धिबल माता-पिता तथा पति की मृत्यु के पश्चात् सुभागी में जागृत हुआ । सुभागी पर पाँच सौ रुपये का माता पिता की अन्त्येष्टि का कर्ज था तथा उसकी जान । मगर वह हिम्मत न हारती थी । तीन साल तक सुभागी ने रात को रात और दिन को दिन न समझा । उसकी कार्यशक्ति और पौरुष देखकर लोग दाँतों तले उंगली दबाते थे । दिनभर खेती-बाड़ी का काम करने के बाद रात को चार-चार पसेरी आटा पीस डालती थी । तीसवें दिन पन्द्रह रुपये लेकर वह सजनसिंह के पास पहुँच जाती । इसमें कभी नागा न पड़ता । यह मानो प्रकृति का अटल नियम था ।

ग्रामीण समाज में पर्दा प्रथा अपने विशाल रूप में परिव्याप्त है । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में पर्दा प्रथा के अनेक दुष्परिणामों की विवेचना की है । पर्दा प्रथा नारियों के शारीरिक तथा मानसिक विकास में बाधक है किन्तु ग्रामीण समाज में तो क्या मजाल की बहु के हाथ की अंगुली भी दीख जाये । "स्वर्ग की देवी" कहानी में लीला जिस दिन से सुसुराल में गई उसकी उसी दिन से परीक्षा शुरु हो गई । उसे बचपन में ताजी हवा पर जान देना सिखाया गया था । किन्तु ससुराल में हवा के सामने मुंह खोलना भी पाप था । बचपन में सिखाया गया था कि रोशनी ही जीवन है यहाँ रोशनी के दर्शन भी दुर्लभ थे । लीला की सास बड़ी कर्कशा स्त्री थी । "मजाल क्या कि बहु अपनी अंधेरी कोठरी के द्वार पर खड़ी हो जाये,

या कभी छत पर टहल सके । प्रलय आ जाता, आसमान सिर पर उठा लेती । अपने बेटे सीतासरन से कहती मुझे भी चांदनी में सोना अच्छा लगता है ।[1] पर्दे में रहते हुए बहुओं का शरीर व स्वास्थ्य खराब हो जाता चूंकि यह गांव की प्राचीन परम्परा बनी हुई थी अत: उसको समाप्त करना असंभव था । लीला का स्वास्थ्य भी पर्दे में रहते हुए वायु तथा प्रकाश के अभाव में क्षीण हो गया । कोठरी में रहते रहते उसकी दशा बिगड़ती जाती थी किन्तु सास को इसकी परवाह न थी ।

प्रेमचन्द पर्दा प्रथा के कट्टर विरोधी थे । प्रेमचन्द ने अपनी कहानी "कानूनी कुमार" में जहां एक ओर तम्बाकू बहिष्कार, भिखमंगा, बहिष्कार-बिल, तलाक बिल आदि ऐसेम्बली में प्रस्तुत कराने की योजना कुमार द्वारा बनवाई वहीं पर्दा हटाव बिल भी प्रस्तुत कराया है, कानूनी कुमार पार्क में परदे वाली महिलाओं को घास में बैठी देखकर ठन्डी व लम्बी सांस लेता है तथा स्वयं ही कहता है — "गजब है , गजब है, कितना घोर अन्याय है । कितना पाशविक व्यवहार । यह कोमलांगी सुन्दरियां चादर में लिपटी हुई कितनी भद्दी लगती हैं, कितनी पुरुष लगती है । .... बहुत जल्दी ऋषियों की यह भूमि वीर-प्रसविनी जननी रसातल को चली जायेगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा । गवर्नमेंट को क्या फिक्र । लोग कितने पाषाण हो गये हैं । आंखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं और जरा भी नहीं चौंकते । यह मृत्यु का शैथिल्य है । यहां भी कानून की जरूरत है । एक ऐसा कानून बनना चाहिए जिससे कोई भी स्त्री परदे में न रह सके । ... माताओं पर देश का भविष्य अवलंबित है । "परदा हटाव बिल" पेश होना चाहिए, ऐसे नपुंसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा पड़नी चाहिए । यह बिल भी ऐसेम्बली में खुलते ही पेश कर देना चाहिए ।...."

इस प्रकार प्रेमचन्द ने पर्दा तथा विभिन्न दुष्परिणामों का विवेचन अपनी कहानी में करके पर्दा प्रथा हटाने पर बल दिया है । पर्दा प्रथा समाज

---

1. "स्वर्ग की देवी" (मानसरोवर, तीसरा भाग) पृष्ठ-73

में कापने गहरी ज ड़े जमाये हुए हैं । अत: व्यक्तिगत रूप से इस समस्या का समाधान असंभव है । इसलिए सरकारी हस्तक्षेप प्रेमचन्द ने आवश्यक समझा ।

बहुविवाह प्रथा

"एक नहीं चार रखो, मरदों के लिए कौन रोक है ।"[1] इस विचार-धारा को प्रेमचन्द ने स्त्रियों के प्रति अन्याय माना है । प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में बहुविवाह प्रथा का उल्लेख किया है । इसके अन्तर्गत उन्होंने निम्नवर्ग व उच्च वर्ग को भी बहुविवाह प्रथा का शिकार दिखाया है, अनेक बार तो एक स्त्री से सन्तानोत्पत्ति न होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर लेते हैं किन्तु कुछ विलासी व्यक्ति ऐसे भी दिखाये हैं जो कई-कई स्त्रियों को घर में रखना अपनी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन समझते थे । इसमें राजा, महाराजा तथा जमींदार व उच्चवर्ग के लोग आते हैं, "अग्नि समाधि" कहानी में प्रेमचन्द ने लिखा है -- "घर से भागो जाती थी, मुझे रास्ते में मिल गई । घर का कामकाज करेगी, पड़ी रहेगी ।[2] ऐसा कहकर पगाधा अपनी पहली पत्नी रुक्मिन के साथ कौशल्या को भी घर में रख लेता है । इसी प्रकार प्रेमचन्द की "बहिष्कार" कहानी का सोमदत्त पहले तो अपनी कर्कशा, जबान को तेज कालिन्दी को घर से निकाल देता है, दूसरा विवाह करने के पश्चात् कालिन्दी को भी रख लेता है । प्रेमचन्द ने सदैव ऐसे व्यक्तियों को धिक्कारा है जो विलास के लिए बहुविवाह करते हैं, केवल उन्हीं लोगों को छोड़कर जो अपनी वंशपरम्परा कायम रखने के लिए द्वितीय विवाह करते हैं । उनकी दृष्टि में यह क्षम्य है ।

बहुविवाह प्रथा के परिणाम स्वरूप स्वयं अपनी ही पत्नी पति को तिरष्कृत करती हुई तथा लज्जित करने के लिए व्यंग करती है --"आइये मिस्टर केशव, मैं आपको ऐसी सुशील, ऐसी सुन्दरी, ऐसी विदुषी रमणी पाने पर बधाई देती हूँ । जिसे सुनकर केशव का मुख विकृत हो जाता है ।

---

1. "आगा पीछा"॥मानसरोवर, चौथा भाग॥ पृष्ठ-122
2. "अग्नि समाधि"॥मानसरोवर, पांचवां भाग॥ पृ0-172

लज्जा और ग्लानि से उसके चेहरे पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था ।[1] मानसरोवर के द्वितीय भाग में संकलित "जीवन का शाप" कहानी में चंचल प्रवृत्ति, वासनायुक्त पुरुष के अन्त में प्रायश्चित कराया है । शापूर को अन्त में फूट-फूट कर रोना पड़ता है । "उन्माद" कहानी में प्रेमचन्द ने मनहर से भी प्रायश्चित कराया है । पहले वह भारतीय विचारों से प्रेरित हो कहता है कि "सुभागा स्वर्ग की सबसे बड़ी विभूति है जो मनुष्य के चरित्र को उज्ज्वल और पूर्ण बना देती है, जो आत्मोन्नति का मूल मंत्र है । मुझे मालूम नहीं कि विवाह का क्या उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास है ।"[2] किन्तु विदेश जाकर वह मनहर विदेशी विचारधारा में बदल जाता है । उसके मिजाज में सांसारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिए वहां कोई स्थान न रहा । बागेश्वरी के त्याग और सेवा का महत्व भी मनहर की निगाहों में कम होता जाता । बागेश्वरी अब मनहर को एक व्यर्थ सी वस्तु मालूम होती थी । इस कहानी में मनहर को इंगलैंड की मेम ने खूब अच्छी तरह से खींचा है । प्रेमचन्द ने अन्तिम क्षणों में उसको उन्मादिनी की स्थिति में चित्रित किया है । द्वितीय विवाह ने उसकी समस्त सुख शान्ति छीन ली । इस प्रकार प्रेमचन्द ने मनहर को जो विलासी व्यक्ति हैं उन्हें दो-दो विवाहों में बांधकर प्रेमचन्द ने भरकर रुलाया है । ऐसे व्यक्तियों के प्रति प्रेमचन्द की लेशमात्र भी सहानुभूति न थी ।

<u>अन्तर्जातीय विवाह</u>

प्रेमचन्द ने अपने विस्तृत साहित्य के अन्तर्गत कहानियों में अन्तर्जातीय विवाह का वर्णन बहुत अधिक नहीं किया है । किन्तु फिर भी उनकी कुछ कहानियां ऐसी उपलब्ध हैं जिसमें उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह संबंधी समस्या को नायक नायिका के समक्ष उपस्थित किया है । यद्यपि प्रेमचन्द जातिपांति, छुआछूत, धनी-निर्धन, ऊंचनीच, अवर्ण-सवर्ण आदि संबंधी विचारों के

---

1. "मानसरोवर", पांचवां भाग, पृष्ठ-226
2. "उन्माद"[मानसरोवर द्वितीय भाग] पृष्ठ-115

विरोधी नहीं है तथापि उन्होंने जहां भी अन्तर्जातीय,अन्तर्वंशीय नायक-नायिका के विवाह का प्रश्न उठाया है वहां उनकी लेखनी कुछ बाधित सी प्रतीत होती है । तथा जहां कहीं भी उन्होंने इस प्रकार के विवाह को अपनी कहानियों का विषय बनाया है वहां उन्होंने नायक नायिका को द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों में रखा है । दो-एक स्थानों पर प्रेमचन्द ने इस विषय में अपने शौर्य का प्रदर्शन अवश्य किया है किन्तु ऐसी परिस्थिति में पहले उन्होंने कहानी के नायक नायिका को विषम से विषम परिस्थितियों में डाल उनका परीक्षण किया है तभी उन्होंने उन्हें आपसी विवाह की अनुमति दी है ।

प्रेमचन्द द्वारा रचित "कायर" शीर्षक कहानी में हमें अन्तर्जातीय विवाह का स्वरूप दृष्टिगत होता है । प्रेमचन्द ने जाति-पाति के बन्धन पर टिप्पणी करते हुए "कायर" कहानी में लिखा है -- "न जाने यह जाति पाति का बन्धन कब टूटेगा ।"[1] उनकी जातियों में लड़कियों का आदर नहीं होता लेकिन विवाह तो अपनी बिरादरी में ही करना पड़ेगा । प्रेमा के पिता भी यद्यपि स्त्री शिक्षा के पूर्ण समर्थक थे, लेकिन इसके साथ ही कुल मर्यादा की रक्षा भी करना चाहते थे । अपनी ही जाति के सुयोग्य वर के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर सकते थे, लेकिन उस क्षेत्र के बाहर कुलीन से कुलीन और शिक्षित से योग्य वर की कल्पना भी उनके लिए असह्य थी । इससे बड़ा अपमान वे सोच ही नहीं सकते थे ।[2] प्रेमचन्द विवाह का उद्देश्य स्त्री पुरुष का सुखमय जीवन मानते थे । वह जाति में किया गया विवाह व्यर्थ है जिसमें स्त्री पुरुष का जीवन रो-रोकर कटे ।

दहेज प्रथा

भारतवर्ष में दहेज की समस्या आधुनिक समय में ही नहीं वरन् वह काफी समय से चली आ रही है । दहेज की बढ़ती हुई प्रथा के कारण माता-पिता अपनी कन्याओं के लिए पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना अयोग्य वर से उसका विवाह निश्चित कर देते । अनेक माता पिता तो कन्या

---

1. "कायर" (मानसरोवर, प्रथम भाग) पृ0- 229
2. "कायर"(मानसरोवर, प्रथम भाग) पृ0- 232

विवाह की चिन्ता के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते । यह समस्या आज की नहीं वरन् यह प्रेमचन्द युग की भी विषम समस्या थी जिसका प्रभाव प्रेमचन्द के हृदय पर पड़ा तथा दहेज प्रथा को बढ़ती हुई समस्या को अपनी कहानियों का विषय बनाया । उन्होंने "उद्धार" शीर्षक कहानी में विवाह की दुष्प्रथा पर प्रहार करते हुए लिखा है -- "हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिन्ताजनक, इतनी भयंकर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्यों कर हो । विरले ही ऐसे माता-पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद भी एक कन्या उत्पन्न हो जाये तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें । कन्या का जन्म होते ही उसके पिता को विवाह की चिन्ता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियां खाने लगता है, अवस्था इतनी निराशामय तथा भयावह हो गई है कि ऐसे माता-पिता की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते हैं, मानों सिर से बला टली । इसका कारण केवल यही है कि दहेज की दर-दिन दूनी रात चौगुनी पावस काल के जल-वेग के समान बढ़ती चली आ रही है । जहां दहेज की सैकड़ों में बातें होती थी, वहां हजारों तक नौबत आ पहुंची । अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी-मोटी शादियों में पांच सौ से एक हजार तक तय हो जाता था पर अब मामूली-मामूली विवाह भी तीन-चार हजार के नीचे नहीं तै होते ।"[1]

वेश्या समस्या

यद्यपि वेश्या समस्या को प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि में चित्रित नहीं किया है, तथापि उनका कुछ कहानियों में वेश्या समस्या पर भी ध्यान गया है । यह दूसरी बात है कि यह समस्या नगरीय पृष्ठभूमि पर चित्रित हुई हो अत: सामाजिक पक्ष के अन्तर्गत इसका चित्रण करना अनुचित

---

1. "उद्धार" (मानसरोवर, तीसरा भाग) पृष्ठ-38
2.

न होगा । प्रेमचन्द वेश्या समस्या के लिए केवल स्त्रियों को उत्तरदायी कभी नहीं मानते हैं, वरन् इस नीच प्रवृत्ति के लिए विवश करने वाली सामाजिक परिस्थितियों को ही दोषी मानते हैं । "शूद्रा" शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने गोरा तथा उसकी साथिनों को ऐसी ही परिस्थितियों के मध्य चित्रित किया है । एक बूढ़ा ब्राह्मण गोरा तथा उसकी सखी को बहकाकर मिर्च के टापू से आता है जहां उन्हीं के समान अनेक स्त्रियों को इसी प्रकार लाकर रखा गया था तथा उसको अनुचित संबंध करने के लिए बाध्य किया जाता था । मानसरोवर तृतीय भाग में लिखित "नैराश्य लीला" शीर्षक कहानी में भी नायिका वेश्या बनने पर मजबूर हो जाती है वह कहती है — "मेरे अधःपतन का दोष मेरे सिर नहीं, मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है जो मेरा स्वामी बनना चाहता था" ।[1] वह अपने अधःपतन पर पश्चाताप् करती हुई कहती है — "आह.। वह बुढ़िया जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डायन निकली । मेरा सर्वनाश हो गया । मैं अमृत खोजती थी, विष मिला । निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गन्दे विषाक्त नाले में गिर गयी ।"[2]

इस निर्दयी समाज के प्रति अपनी कुण्ठित भावनाओं को "वेश्या" कहानी में माधुरी ने अपने अन्तिम पत्र में व्यक्त किया है जो सरदार सिंगार सिंह को लिखा गया है अपनी भावनाओं को प्रकट करती हुई माधुरी लिखती है —"सरदार साहब । मैं आज कुछ दिनों के लिए यहां से जा रही हूँ, कब लौटूंगी नहीं जानती । कहां जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती, जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी, बेहयाई की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही है और घृणा हो रही है उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमें तुम मुख्य हो । तुम महीनों से मुझपर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो, मगर मैं तुमसे पूछती हूँ उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाजार में बैठने दोगे ? कभी नहीं । उन देवियों में ऐसी कोई वस्तु है, जिसे तुम संसार भर की दौलत से भी

---

1. "एक आंच की कसर" [मानसरोवर, तीसरा भाग] पृष्ठ- 9।
2. "एक आंच की कसर" [मानसरोवर तीसरा भाग] पृष्ठ-9।

मूल्यवान समझते हो, लेकिन जब तुम शराब के नशे में चूर, अपने एक-एक अंग में काम का उन्माद भरे हुए आते थे तो तुम्हें कभी ध्यान आता था कि तुम उसी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ अपने पैरों से कुचल रहे हो ? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुलदेवियों को इस अवस्था में देखकर तुम्हें कितना दुःख होता ? कभी नहीं । यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है जो किसी लाश को देखकर चारों ओर से जमा हो जाते हैं । उसे नोच नोच कर खाते हैं । यह समझ रखो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती । यदि वह ऐसा कर रही है तो समझ लो कि उसके लिए कोई आश्रय और कोई आधार नहीं है, और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतनी निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगाकर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है । क्या वह नारी नहीं है ? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है ? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते । उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायेगी । और, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे कर ले । हम असहाय हैं, अशक्त हैं, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं ।"[1]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने इस प्रकार के कथनों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि वेश्याओं की दुरावस्था का दोष अधिकतर समाज के ही ऊपर है । उसकी दुर्गति समाज के कुत्तों ही के कारण होती है । वह अपना उद्धार चाहती है । यदि समाज उसपर भ्रष्ट होने का आरोप लगाता है तो वे लोग उससे कहीं अधिक भ्रष्ट हैं जो वहाँ अपनी वासना तृप्त करने के लिए जाते हैं । समाज के ढोंगी उद्धारकर्त्ता भी उसके प्रेम का उपहार इसलिए स्वीकार नहीं करते क्योंकि वह वेश्या है । किन्तु नारी आश्रय चाहती है, अवलम्ब चाहती है । प्रेमचन्द का मंतव्य है कि यहीं समाज में उसे आश्रय मिल जाये, तो वह पुरुष की प्रेम शक्ति से जीवन के समस्त सुखों तथा प्रलोभनों को तिलांजलि दे सकती है । इन अबलाओं का उद्धार तभी संभव है जबकि समाज उनके संस्कारों को भुलाकर

---

1. "नरक का मार्ग"(मानसरोवर,तीसरा भाग) पृष्ठ-30

उसको आश्रय दे दे । प्रेमचन्द वेश्याओं के उद्धार के प्रबल आकांक्षी रहे हैं । माधुरी दयाकृष्ण से कहती है — "मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूंगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छांह तो मिलनी ही चाहिए, वह छांह तुम मुझे दे दोगे ? अगर नहीं दे सकते, तो मुझे छोड़ दो ।[1]

इन अबलाओं की दुर्गति का कारण समाजी की अन्धाभक्ति तथा नारी की व माता-पिता की लोकलज्जा है । किन्तु समाज के द्वारा किये गये पापों का प्रायश्चित इन वेश्याओं तथा इनकी सन्तानों को करना पड़ता है । "आगा पीछा" कहानी की वेश्या कोकिला की पुत्री श्रद्धा को भी समाज के पापों का प्रायश्चित करना पड़ा । वास्तव में पापियों का समूह इन समस्त पापमय परिस्थितियों को उत्पन्न करता है । कोकिला अब उस कलुषित जीवन के चिन्हों को अपने आंसुओं से धो रही थी । कोकिला की नवजात कन्या श्रद्धा कोकिला के लिए एक ज्योति बनकर आई, वह उसके लिए जीवन-सन्देश तथा मूक उपदेश बनगई । कोकिला को अपने पुराने दिनों की स्मृति आते ही अपने जीवन से घृणा होने लगी वह विषाद और निराशा से विकल होकर पुकार उठती है —"हाय । मैंने संसार में जन्म ही क्यों लिया ? उसके दान और व्रत से उन कालिमाओं को धोने का प्रयत्न किया और जीवन के बसन्त की सारी विभूति इस निष्फल प्रयास में लुटा दी ।[2] अपनी पुत्री श्रद्धा के ऊपर भी वह वेश्या पुत्री का कलंक नहीं देखना चाहती । वह नहीं चाहती कि समाज के पापियों की पापमयी दृष्टि उस कन्या पर पड़े । श्रद्धा ही अब उसकी विभूति, उसकी आत्मा, उसकी जीवन दीपिका थी । वह कभी-कभी उसे गोद में लेकर साध से छलकती हुई आंखों से देखती और सोचती — "क्या यह पावन ज्योति भी वासना के प्रचण्ड आघातों का शिकार होगी ? मेरे प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे ? आह । क्या ऐसी औषधि नहीं है जो जन्म संस्कारों को मिटा दे ? वह भगवान से सदैव प्रार्थना करती है कि मेरी श्रद्धा किसी कांटों में न उलझे ।"[3] किन्तु भारतीय समाज वेश्या पुत्रियों के संबंध में

---

1. "वेश्या" (मानसरोवर, द्वितीय भाग) पृष्ठ-49
2. "आगा पीछा"(मानसरोवर चौथा)भाग पृष्ठ-112
3. "आगा पीछा"(मानसरोवर, चौथा भाग) पृष्ठ-112

अपने नितान्त संकुचित विचार तथा संकुचित हृदय रखता है । वह चाहे महान उच्च आदर्शों से परिपूर्ण होकर महान पतिव्रताधर्म के निर्वाह के लिए अपना समस्त जीवन ही क्यों न अर्पित कर दे । किन्तु समाज अपनी संकुचित व संकीर्ण विचारधाराओं की अभिव्यक्ति में लेशमात्र भी संकोच नहीं करता । समस्त पापों का आरोपण वह वेश्या पर ही करता है । कोकिला वेश्या की पुत्री श्रद्धा एक शान्त लज्जाशील तथा विद्या की उपासिका आदि समस्त गुणों से युक्त नारी के समाज के समक्ष उपस्थित होती है किन्तु फिर भी "विद्यालय में भले ही चार की लड़कियाँ उसके साथ में अपना अपमान समझती थी । रास्ते में लोग उँगली उठाकर कहते — "कोकिला रँडी की लड़की है ।" उसका सिर झुक जाता, क्षोभ क्षण भर के लिए लाल होकर दूसरे ही क्षण सफेद हो जाते ।[1] ऐसी पावन गुणों से युक्त श्रद्धा के साथ भगतराम के माँ बाप भी भगतराम का विवाह स्वीकार नहीं करते । भगतराम के पिता चौधरी कहते हैं — "तो क्या कोकिला रंडी की लड़की से ब्याह करना चाहते हो । नाक कटवाने पर लगे हो क्या ? बिरादरी में तो कोई पानी पियेगा नहीं । रंडी की बेटी चाहे इन्नर की परी हो, तो भी रण्डी की बेटी है । हम तुम्हारा विवाह वहाँ न होने देंगे । अगर तुमने विवाह किया तो हम दोनों तुम्हारे ऊपर जान दे देंगे ।"[2] चौधरी साहब को पुत्र का कुंवारा रहना मंजूर था किन्तु पतुरिया के घर में लड़के का विवाह करना मंजूर नहीं था । जब भगतराम श्रद्धा के समक्ष माँ-बाप को विवाह में बाधित प्रकट करता है तो श्रद्धा भगतराम के समक्ष इस पढ़े लिखे समाज के वेश्या जाति के प्रति उत्पन्न संकुचित विचारों को स्पष्ट करती हुई कहती है — " प्यारे, मुझसे उनका घृणा करना उचित है, पढ़े लिखे आदमियों में ही ऐसे कितने निकलेंगे, इसमें उनका कोई दोष नहीं ।"[3]

प्रेमचन्द वेश्या उद्धार के लिए हृदय में कृत संकल्प थे । उनका विचार है कि जबतक व्यक्ति में आत्मगौरव उत्पन्न नहीं हो जाता, जबतक वे साहसिक बनकर समाज में परिव्याप्त वेश्या के प्रति संकुचित विचारधारा का विनाश नहीं करते तबतक इन निराश्रितनारियों का उद्धार नहीं हो सकता । अतः समाज में ऐसे समाज सुधारकों की आवश्यकता है जो बिना किसी भय के इन नारियों

---

1. "आगा पीछा"(मानसरोवर, चौथा भाग) पृ०- 113
2. "आगा पीछा"(मानसरोवर, चौथा भाग) पृ०-122

के उद्धार में संलग्न हो जायें । पुरुष का निर्विकार प्रेम वेश्या को पापों से मुक्त कर सकता है । वह उसे जीवन की एक नवीन अनुभूति करा सकता है । प्रत्येक वेश्या में कहीं न कहीं स्त्रीत्व अवश्य होता है तथा अनुकूल परिस्थितियां मिलते ही वह स्त्रीत्व लहलहा उठता है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में यही स्त्रीत्व सूख कर विनष्ट हो जाता है तथा कामान्ध हो जाता है । प्रत्येक वेश्या इस घृणित कार्य से एक न एक दिन ऊब कर अवश्य जाती है । "वेश्या" कहानी की माधुरी ने इस घृणित कार्य से ऊबकर दयाकृष्ण को शरण की अभिलाषा व्यक्त की । उसे उचित आश्रय चाहिए । कामान्ध व्यक्तियों के हास-परिहास नहीं, वेश्या कहानी में माधुरी के रूप का व्यापार एक बुढ़िया स्त्री के माध्यम से होता है जो ग्राहक पटाने का कार्य करती है । "डामुल का कैदी" कहानी में लैला वेश्या का प्रसंग आया है । सेठ लूबचन्द एक ओर तो प्रतिदिन ठाकुर भोग लगाते हैं तथा एक ओर लैला के मुजरे को प्रथम स्थान देते हैं । किन्तु ठाकुर जी को भोग लगाना तथा ठाकुर जी का क्रोधित होना उतना नहीं अखरता जितना कि लैला का नाराज़ होना । मन्दिर के पुजारी को बार-बार भोग लगाने की याद दिलाने पर वे उसे झिड़काकर निर्भय होकर टाल देते हैं किन्तु वेश्या लैला से सदैव भयभीत रहते हैं । जो वेश्याएं अपना परिष्कार चाहती हैं उनसे प्रेमचन्द की हार्दिक सहानुभूति रही है । किन्तु दुर्भाग्य कि समाज इन परिष्कृत नारियों की उपेक्षा ही करता है ।

"सपेद खून" कहानी में साधों का पादरी के साथ रहना बिरादरी की दृष्टि में सर्वथा अनुचित कार्य है, यह अन्याय है, अधर्म है । बिरादरी यह कभी सहन नहीं कर सकती कि हमारे धर्म का व्यक्ति किसी दूसरे धर्म के व्यक्ति के साथ रहे अथवा भोजन करे । अत: बिरादरी का निर्णय है कि साधो को बिरादरी से निष्कासित कर दिया जाये । साधो के पिता जादो राय बड़ी दुविधा में थे । एक ओर तो अपने प्यारे बेटे की प्रीत थी दूसरी ओर बिरादरी का भय मारे डालता था । जिस लड़के के लिए रोते रोते आंखे पूट गई, आज वही सामने खड़ा,आंखों में आंसू भरे कहता है --

"पिताजी, मुझे अपनी गोद में लीजिए और मैं पत्थर की तरह अचल खड़ा हूँ। शोक। इन निर्दयी भाईयों को कैसे समझाऊ, क्या करूं, क्या न करूं।"[1] लेकिन साधो की मां की ममता उमड़ आयी और देवकी से न रहा गया। उसने अधीर होकर कहा — "मैं अपने लाल को अपने घर में रखूंगी और कलेजे से लगाऊंगी। इतने दिनों के बाद मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती। वह अपने पुत्र को आश्रय देने के लिए कृत संकल्प है और कहती है — "हां, चाहे बिरादरी ही छूट जाये। लड़के वालों के लिए ही आदमी आड़ पकड़ता है। जब लड़का ही न रहा तो भला बिरादरी किस काम आयेगी।"[2] उसे बिरादरी भयभीत नहीं करती। उसका धर्म है कि वह अपने बेटे को घर में आश्रय दे। साधो भी अपने कृत्य पर प्रायश्चित करने को तैयार है वह अपनी नादानी का, जिसके कारण उससे बिरादरी का अपराध हुआ है, दण्ड भोगने को तैयार है किन्तु बिरादरी के ठेकेदार उसको इस प्रकार तो नहीं छोड़ सकते वह साम, दाम, दण्ड, भेद चारों नीतियों को अपनाकर व्यक्ति पर "आक्रमण" करने के लिए तत्पर रहते हैं। देवकी के कथन का बिरादरी के ठेकेदारों पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ। कई ठाकुर लाल-लाल आंखें निकालकर बोले — "ठाकुराईन। बिरादरी को तो तुम खूब मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्ते पर जाये, लेकिन बिरादरी चूं तक न करे। ऐसी बिरादरी कहीं और होगी। हम साफ-साफ कह देते हैं कि अगर लड़का तुम्हारे घर में रहा तो बिरादरी भी बता देगी कि वह क्या कर सकती है।"[3]

ग्रामीण समाज की अन्य सामान्य समस्याएं

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में पारिवारिक कलह का भी अच्छा चित्रण किया है। कन्या विवाह के पश्चात् ससुराल में जाती है। उसे वहां अपने घर से नितान्त भिन्न वातावरण मिलता है। जिसमें उसे स्वयं को समायोजित करने में कुछ समय लगता है, किन्तु बहु की यह एक प्रकार से परीक्षा का समय होता है जिसमें उसकी सास तथा नन्द अपने प्रहार के लिए सदैव सतर्क रहती है। ऐसी परिस्थिति में अगर बहु ने अपने सद्गुणों, सद्व्यवहार, कुशलता तथा दूरदर्शिता से वातावरण को

1. "खून सफेद" मानसरोवर, आठवां भाग, पृ0-13
2. "खून सफेद" मानसरोवर, आठवां भाग, पृ0- 14
3. "खून सफेद" मानसरोवर, आठवां भाग, पृ0-15

अनुकूल बना लिया तो ठीक है अन्यथा उसकी जीवन नैया भंवर में घूमती प्रतीत होने लगती है । गाँव में परम्परा है कि बहु बहु के घर में प्रवेश करते ही घर का समस्त कामकाज बहु करे, घर का खाना पकाये । अतः इस प्रथा को लगभग सभी सासें निभाना आवश्यक समझती हैं । सास एक शासक के रूप में बहु पर शासन करती है । उसे यह कदापि सहन हो सकता कि कल की आई पराये घर की लड़की उसके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करे अथवा उसकी शासन सत्ता को हड़पने का प्रयास करे । "स्वर्ग की देवी" कहानी में सीताशरन की माता बहु लीला पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखती है । वह आगुन्तक बहु को वह समस्त कष्ट देना अपना अधिकार समझती है जो उन्होंने सास के राज्य में झेले थे । "शांति" कहानी की श्यामा कहती है —"उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिल्कुल लौंडी समझती थी ।" श्यामा की सास,नन्दें उसके बनाव श्रृंगार पर नाक-भौं सिकोड़ती, कभी कभी इन्हीं झगड़ों के कारण घर का वातावरण विषादमय बन जाता । प्रेमचन्द ने ऐसे स्थानों पर स्त्री को धैर्य, त्याग, साहस, प्रेम तथा सेवा का संदेश दिया है जिनसे वह इस सामाजिक क्रूर परिस्थिति पर आसानी से विजय प्राप्त कर सकती है । कहीं कहीं सास को निराश्रित होकर बहु के व्यंग्य बाणों का भी शिकार बनना पड़ता है । "पंचपरमेश्वर" कहानी में भी प्रेमचन्द ने खाला के साथ यही सब कुछ दिखाया है । इन झगड़ों का कारण प्रेमचन्द ने स्वामित्व अधिकार की प्राप्ति, सास की शासनप्रियता, बहु की स्वच्छन्दता, कार्य का बहु पर अत्यधिक भार, पति-पत्नी का अधिक लगाव आदि बताया है । "दासवाली" कहानी में मुखिया से उसकी सास कहती है —"मेरे घर में रानी बनकर निर्वाह न होगा किसी की चाम प्यारा नहीं होता काम प्यारा होता है ।[1]

---

1. "दासवाली"‖मानसरोवर,प्रथम भाग‖ पृष्ठ-300

पंचायत व्यवस्था

भारतीय ग्राम जीवन की एक सामान्य विशेषता है कि वहां की समाज व्यवस्था पंचायतों पर आधारित होती है । पंचायत ही उनकी कचहरी तथा उच्च न्यायालय होते थे जहां गांवों में होने वाले प्रत्येक छोटे-बड़े, पारिवारिक, सामूहिक झगड़ों को पंचों के समक्ष रखा जाता था । पूरे गांव की एक विशाल सभा आयोजित होती । जिसमें गांव का सरपंच समस्त झगड़ों को सुनता, आपसी विचार-विमर्श होता, सर्वमान्य हल सरपंच द्वारा सुना दिया जाता जिसे व्यक्ति को मानना आवश्यक होता था । "पंच परमेश्वर" कहानी में खाला जान कहती है — "पंच न किसी के दोस्त होते हैं न दुश्मन.... दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता, पंचके दिल में खुदा बसता है, पंचों के मुंह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ से निकलती है ।"[1]

ग्राम वासियों को अपने पशुओं के प्रति सहज आसक्ति होती है । भारतीय ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित है अत: पशु ही उनका धन होते हैं । कृषि कार्य इन बैलों पर ही आधारित होता है अत: अधिकांश घरों में पशु बंधे होते हैं । जिसके घर में न बैल हो, न गाय हो, वह घर तो भूतवासा है । कृषक बैलों को अपने पुत्रों से अधिक प्यार करते हैं । "सभ्यता का रहस्य"कहानी में दमड़ी को राय साहब उसे बैल बेचने की सलाह देते हैं किन्तु दमड़ी यदि बेच देगा तो बिरादरी में मुंह दिखाने लायक नहीं रहेगा, लड़की की सगाई न हो पायेगी,ठाठ बाहर कर दिया जायेगा ।"[2] दमड़ी चाहे जाड़े में ठिठुरे किन्तु अपनी मर्यादा के लिए बैल जरूर बांधेगा । पशु कृषक के सहायक ही नहीं वरन् मित्र भी होते हैं । ये पशु उसे कृषि कार्य में सहायता देते हैं, जीवन के आधार होते हैं, अन्नदाता मान-मर्यादा के रक्षक आदि सभी कुछ होते हैं । केवल कृषक ही नहीं उसका समस्त परिवार अपने पशुओं पर प्राण देता है । दमड़ी जैसे ही अपने बैलों के समीप आया दोनों बैलों ने अपने मालिक को देखकर पूंछ खड़ी कर दी, हुंकारने लगे । जब वह पास गया तो दोनों उसकी हथेलियां चाटने लगे ।"[3] कृषक अपने पशुओं को

---

1. "पंच परमेश्वर"[मानसरोवर, सातवां भाग] पृ0-156,163, 164.
2. "सभ्यता का रहस्य" [मानसरोवर, चौथा भाग] पृ0-199
3. "सभ्यता का रहस्य[मानसरोवर, चौथा भाग] पृ0-202

भूखा नहीं देखा सकता । अपने बैलों को भूखा देखा दमड़ी उसकी क्षुधा वेदना से पीड़ित हो गया तथा आंखों सजल हो गई । किसान को अपने बैल अपने लड़कों से प्यारे होते हैं वह उन्हें अपना पशु नहीं, मित्र समझता है, बैलों को भूखो लाड़ा देखाकर नींद आंखों से भाग गई । कुछ सोचता हुआ दमड़ी उठा । हंसिया निकाली और चारे की फिक्र में चला ।"[1]

"बलिदान" शीर्षक कहानी में गिरधारी का हृदय अपने बैलों को मंगलसिंह के हाथों बेचकर टूट सा गया । उसने अबतक बैलों को अनेक आशाओं से खिलाया था । आज आशा का कल्पित सूत्र भी टूट गया । मंगलसिंह, गिरधारी की लाट पर रुपये गिन रहे थे और गिरधारी बैलों के पास विषादमय नेत्रों से उनके मुंह की ओर ताक रहा था । आह: यह मेरे खेतों के कमाने वाले, मेरे जीवन के आधार, मेरे अन्नदाता, मेरी मान-मर्यादा की रक्षा करने वाले, जिनके लिए पहर रात से उठकर छांटी काटता था । जिनके लिए सारा भर दिन-भर हरियाली उखाड़ता था । ये मेरी आशा की दो आंखें, मेरे इरादे के दो तारे, मेरे अच्छे दिनों के दो चिह्न, मेरे दो हाथ अब विदा हो रहे हैं । जब मंगलसिंह ने रुपये गिनकर रख दिये और बैलों को ले चले तब गिरधारी उनके कंधों पर सिर रखकर खूब फूटफूट कर रो पड़ा । जैसे कन्या मायके से विदा होते समय रोती है । सुभागी भी दालान में खड़ी रो रही थी और छोटा लड़का मंगलसिंह को एक बांस की छड़ी से मार रहा था । बैलों के वियोग में गिरधारी ने खाना पीना सब छोड़ दिया यहां तक कि उसने प्राण तक बैलों पर न्योछावर कर दिये । कृषक को कृषि तथा पशु दोनों से ही अगाध प्रेम होता है । अत: उसके बिना उसका जीवन शून्य निरर्थक है ।

---

1. "सभ्यता का रहस्य"|मानसरोवर, चौथा भाग| पृष्ठ- 203
2. "बलिदान"|मानसरोवर, आठवां भाग|पृष्ठ- 72

तथा "कानूनी कुमार" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने पर्दा प्रथा आदि के निर्मूलन का आह्वान किया है । "अग्नि समाधि", "बहिष्कार" तथा "उन्माद" आदि कहानियों में बहुविवाह की प्रथा को निम्न और उच्च वर्गों के लिए एक अभिशाप सिद्ध किया गया है । "कायर" तथा "बहिष्कार" कहानियों में प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हुए जातिभेद के निर्मूलन का संकेत किया है । दहेज प्रथा को प्रेमचन्द ने एक महान सामाजिक अभिशाप के रूप में चित्रित किया है । दहेज प्रथा को प्रेमचन्द ने "उद्धार" तथा "एक आँच की कसर" कहानी में इसके दुष्परिणामों को मार्मिक रूप से चित्रित किया है । विभिन्न सामाजिक कुरीतियों को प्रेमचन्द ने वेश्या समस्या का मूल कारण निर्दिष्ट किया है । आर्थिक परवशता, शोषण प्रतारणा और असन्तोष इस समस्या मूल में है । "नरक का मार्ग" "वेश्या", "दो कब्रें", "आगा पीछा" तथा "डामुल का कैदी" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने वेश्याओं के उद्धार के लिए कृत संकल्पता व्यक्त की है । "दण्ड", "खून सफेद" तथा "मृतक भोज" आदि कहानियों में जाति भावना और धार्मिक कर्मकाण्ड के उस रूप का चित्रण किया है जिसमें ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्ग ग्रस्त हैं और जो इनके पिछड़ेपन का मूल कारण है । प्रेमचन्द का ये मन्तव्य है कि धार्मिक कर्मकाण्ड और जाति व्यवस्था का मूल आधार स्वार्थ-परता और शोषण है । एतएव समाज के स्वस्थ विकास के लिए उसका प्रत्येक दशा में निर्मूलन आवश्यक है । इन सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में ग्रामीण समाज के विविध पक्षीय सूत्रों का भी समुचित नियोजन किया है इनका संबंध ग्रामीण समाज की उस परम्परा से है जिसका विकास शताब्दियों से होता रहा है और जो अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं और हीनताओं के साथ आज भी अक्षुण्ण है । परन्तु फिर भी प्रेमचन्द यह मानते हैं कि इस व्यवस्था को उसके सम्पूर्ण दूषणों से मुक्ति दिलाई जा सकती है । इस प्रसंग में अपेक्षित संकेत "घासवाली" तथा "पंचपरमेश्वर" आदि कहानियों में मिलते हैं । प्रेमचन्द का कथन है कि शिक्षा के प्रचार, अंधविश्वास के निर्मूलन, सद्भावना के विकास और सहिष्णुता की भावना से ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था की अधिकांश बुराइयों को दूर किया जा सकता है । इसी

प्रसंग में ग्रामीण सामाजिक जीवन के एक अन्य पक्ष की ओर संकेत करना भी असंगत न होगा, जिसका संबंध ग्रामीण जीवन के सरल नैसर्गिक और सहिष्णु रूप से है । ये सूत्र ग्रामीण- जन के पशु प्रेम से संबंधित है । हिन्दू धर्म व्यवस्था में तथा ग्रामीण समाज में पशु धन की भौतिक और धार्मिक महिमा वर्णित है । "सभ्यता का रहस्य","दो बैलों की कथा", "मुक्तिधन" तथा बलिदान आदि कहानियों में विभिन्न पात्रों के अपने पशुओं के प्रति निश्छल अनुराग का चित्रण है । इनके माध्यम से प्रेमचन्द ने यह संकेत किया है कि ग्रामीण समाज आज भी अनेक विरोधाभासों से परिपूर्ण परन्तु जीवन्त है । शताब्दियों के शोषण, पराधीनता, अन्धविश्वास और अभिशापों को झेलते हुए भी उनकी आत्मा मरी नहीं है । प्रेमचन्द की प्रतिनिधि कहानियों में इस प्रसंग के जो उदाहरण आज प्रस्तुत किये गये हैं वे इसी तथ्य का उद्घोष करते हैं ।

तृतीय अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का राजनैतिक पक्ष

प्रेमचन्द की समकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

प्रत्येक देश का साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है और प्रत्येक साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। जैसे-जैसे युगीन परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं वैसे ही वैसे साहित्यकार की साहित्यिक विचारधाराएं तथा मान्यताएं भी बदलती रहती हैं। साहित्यकार युग-धर्म की अभिव्यक्ति के प्रयास में समय के साथ चलने के लिए बाध्य हो जाता है। "जब प्रेमचन्द अपने समाज और राष्ट्रीय जीवन की पहचान कर रहे थे तो, उनकी कलम मूल रूप से राजनीतिक समस्याओं पर तनी हुई थी। उनकी आंखों के सामने परिवार, व्यक्ति, सामाजिक परिवेश, राजव्यवस्था की कई चीजें किन्हीं तथ्यों के रूप में नहीं, बल्कि चुनौतीमूलक समस्याओं के रूप में उभरी थीं।"[1] स्वयं प्रेमचन्द इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि साहित्यकार बहुधा अपने देश काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है[2] प्रेमचन्द की विचारधारा भी अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित थी। प्रेमचन्द ने तत्कालीन समाज में रहकर समाज का अधिक नजदीक से तथा गहनता से अध्ययन किया। अतः उनके साहित्य में समाज का सत्य अधिक स्पष्ट रूप से झलकता है। समाज का सम्बन्ध जितना साहित्य से होता है उतना ही वहां की राजनीति से भी होता है। अतः प्रेमचन्द साहित्य, समाज और राजनीति में घनिष्ट सम्बन्ध मानते हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उस

---

1. प्रेमचन्द : सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
   "प्रेमचन्द के संघर्षशील पात्र" रामशुनाथ सिंह, पृष्ठ 62
2. "कुछ विचार" - मुन्शी प्रेमचन्द पृष्ठ 6

का समाज भी अच्छा होगा और जब समाज अच्छा होगा तो वहां की राजनीति भी अच्छी होगी । यह तीनों साथ-साथ चलने वाली चीजें हैं[1]। अतः अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने जिस साहित्य का निर्माण किया उसमें तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ।

प्रेमचन्द की विचारधारा पर राजनीतिक प्रभाव

प्रेमचन्द इन राजनीतियों तथा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए थे । जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है । देश को विदेशी दासता की बेड़ियों से मुक्त कराना जनता का प्रथम उद्देश्य था । अतः जनता अपने तन, मन, धन से इस कार्य के लिए संघर्षशील थी । प्रेमचन्द अपनी लेखनी द्वारा जनता के मध्य विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित करने में संलग्न थे । इन्होंने नगरीय तथा ग्रामीण दोनों स्थानों की राजनीतिक परिस्थितियों का पर्यवेक्षण अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से किया । नगरों में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करना था जबकि ग्रामों में राजनीतिक आन्दोलन का विशिष्ट उद्देश्य विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करना था । नगरों से अधिक दयनीय स्थिति ग्रामीणों की थी जिनका शोषण दो तरफ से हो रहा था । एक ओर विदेशी सरकार इन ग्रामीणों का शोषण कर रही थी दूसरी ओर सरकार के प्रबल समर्थक तथा हितैषी भारतीय नाग भी इन ग्रामीणों का शोषण कर रहे थे । ये शोषक जमींदार, कारिन्दे, महाजन तथा सरकारी अधिकारी - जिसमें पुलिस विशेष रूप से थी, आदि सम्मिलित थे । अतः ग्रामवासियों का स्वतंत्रता प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य इस दोहरी मार से मुक्ति प्राप्त करना था ।

---

1. "प्रेमचन्द घर में" - श्रीमती शिवरानी देवी, पृष्ठ 7।

प्रेमचन्द की विचारधारा पर गांधीवाद का प्रभाव

प्रेमचन्द ने कहा था "असहयोग स्वराज्य के लिए है। स्वराज्य अर्थात किसान मजदूर का राज। वे एक ऐसे समाज का स्वप्न देख रहे थे जिसमें सब बराबर हों, जहां विषमता को आश्रय न मिले और कोई किसी का खून नहीं चूस सके। वे मानते थे कि इस स्वप्न को किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है।"[1] प्रेमचन्द पर भी गांधीवादी विचारधारा का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। अमृत राय लिखते हैं :-

"गांधी जी के लिए प्रेमचन्द के मन में गहरी भक्ति है, अचल निष्ठा कर्म पथ पर उनके नेतृत्व में। इतनी कि मुन्शी जी कभी-कभी संशय में पड़ जाते हैं - प्रमाण किसे मानें, जीवन के अपने अनुभव और ज्ञान की या गांधी को।"[2] उन्होंने अपनी कहानी "आदर्श विरोध" में स्वराज्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। भारत का उद्धार के कोई उपाय है तो वह स्वराज्य है, जिसका आशय है - मन और वचन की पूर्ण स्वाधीनता क्रमागत उन्नति पर से यदि हमारा विश्वास अब तक नहीं उठा था तो अब उठ गया। हमारा रोग अब असाध्य हो गया है। यह अब चूर्णों और अवलेहों से अच्छा नहीं हो सकता उससे निवृत्त होने के लिए हमें कायाकल्प की आवश्यकता है। ऐसे राजपद हमें स्वाधीन नहीं बनाते, बल्कि हमारी आध्यात्मिक पराधीनता को और भी पुष्ट कर देते हैं।[3] जब देश में राजनैतिक आन्दोलन शुरू हुआ तो उसकी झलक ग्रामों में भी पड़ी। गांवों की चौपाले स्वराज्यवादियों का अड्डा बनी तथा गांवों के प्रधान स्वराज्य का प्रचार करने लगे।

---

1. प्रेमचन्द, सम्पादक, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
   "प्रेमचन्द के संघर्षशील पात्र," पृष्ठ 67, शम्भुनाथ
2. "कलम का सिपाही;" अमृतराय, पृष्ठ 213
3. "आदर्श विरोध;" (मानसरोवर, आठवां भाग), प्रेमचन्द, 236, 237

प्रेमचन्द ने ग्रामों में फैली स्वराज्य की लहर को अपनी "लाग-डाट" शीर्षक कहानी में स्पष्ट करते हुए स्वराज्य के अर्थ को भी स्पष्ट किया है - "जब देश में राजनैतिक आन्दोलन शुरु हुआ तो उसकी झनक चौधरी के गांव में भी पहुंची । चौधरी ने आन्दोलन का पक्ष लिया - एक सज्जन ने आकर गांव में किसान सभा खोली । चौधरी उसमें शरीक हुए - जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी । चौधरी स्वराज्यवादी हो गये ।चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा बन गया । चौधरी गांव में स्वराज्य का प्रचार करने लगे ।" प्रेमचन्द ने स्वराज्य के अर्थ तथा उसकी प्राप्ति के साधनों को भी व्यक्त करतेहुए लिखा है - स्वराज्य का अर्थ है अपना राज्य । अपने देश में अपना ही राज्य हो । किन्तु वह स्वराज्य आपसी द्वेष से नहीं वरन् आत्मबल से पुरुषार्थ से, मेल से तथा आपसी सहयोग से ही प्राप्त हो सकता है । इसके लिए वर्षों से आ रही आपसी शत्रुता को त्यागना होगा[1]।"स्वराज्य" खून की नदियां बहाने से प्राप्त नहीं होगा । चौधरी स्वराज्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए लाग-डाट कहानी में कहते हैं - "अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनों, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो, बस यही स्वराज्य है । जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी वे पागल हैं ।

प्रेमचन्द विदेशी सत्ता से ही नहीं वरन् भारतीय शोषकों - महाजन कारिन्दों, सरकारी अधिकारियों तथा जमींदारों आदि, से भी मुक्ति चाहते थे । उनकी दृष्टि में विदेशी शक्ति से मुक्त होना उतना ही महत्वपूर्ण न था जितना अपने भारतीय शोषकों से । इन शोषकों का विनाश अधिक महत्वपूर्ण है ।इसी विचारधारा की अनुभूति भारतीय जनता के लिए आवश्यक थी । चौधरी ग्रामवासियों से कहते हैं -

---

1. "लाग-डाट," [मानसरोवर, छठा भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 224

"तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ और बचे तो परोपकार में लगाओ, वकील मुख्तारों की जेब क्यों भरते हो, थानेदारों को क्यों घूंस देते हो, अमलों की चिरोरी क्यों करते हो ।"[1] प्रेमचन्द ने विदेशीसत्ता के साथ-साथ अपने शोषक वर्ग से मुक्ति प्राप्ति को आवश्यक मानते हुए कहा था - "हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक जुए से भी इस पाखण्डी जुए से भी जो विदेशी शासकों से कहीं अधिक घातक है ।"[2]

स्वराज्य की प्राप्ति केवल शहरी जनता के जीवन का उद्देश्य ही नहीं वरन् ग्रामीण जनता के जीवन का भी प्रमुख उद्देश्य बन गया । "लाग-डाट" कहानी के चौधरी साहब के स्वराज्य सम्बन्धी भाषण होते तो उसमें सम्मिलित होने वाली ग्रामीण जनता की संख्या दिनोदिन बढ़ती जाती ।

प्रेमचन्द की कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण

गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी जो चार उद्देश्य थे उनका प्रभाव ग्रामीण जनता पर भी पड़ा । प्रेमचन्द ने अपनी कहानी "लाग-डाट" में इन्हीं चार उद्देश्यों का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखा है - "अपने हाथ का बना गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी को छोड़ो अपने लड़कों को धर्म-कर्म की शिक्षा दो, मेल से रहो, बस यही स्वराज्य है । उपर्युक्त कथन में गांधी जी के चार उद्देश्य समाहित हैं ।

---

1. "जागरण," 4 जनवरी, 1934
2. "लाग-डाट," (मानसरोवर, छठा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 225

गांधी के साथ सत्याग्रहियों का आगमन होता तो चारों ओर चहल-पहल सी मच जाती । गांव वाले उत्साहपूर्वक चार कदम आगे बढ़ाकर इन सत्याग्रहियों का स्वागत करते । इन सत्याग्रहियों के प्रति ग्रामीण जनता के हृदय में, स्नेह तथा सम्मान के भाव जागृत हो जाते । गांव के सब स्त्री-पुरुष जब काम छोड़कर उनका अभिवादन करने पहुंच जाते । ऐसा प्रतीत होता मानो कोई उत्सव मनाया जा रहा हो । इसी प्रकार के उत्सव का चित्रण "समरयात्रा" शीर्षक कहानी में किया गया है - "आज सवेरे से ही गांव में हलचल मची हुई थी । कच्ची झोपड़ियां हंसती हुई जान पड़ती थीं आज सत्याग्रहियों का जत्था गांव में आयेगा । कोदई चौधरी के द्वार पर चंदोवा तना हुआ है । आटा, घी तरकारी और दही जमा किया जा रहा है । सबके चेहरों पर उमंग, हौंसला आनन्द है । वही बिन्दा अहीर, जो दौरे के हल्कों के पड़ाव पर पाव-पाव दूध के लिए मुंह छिपाता फिरता था आज दूध और दही के मटके अहिराने से बटोर कर रखा गया है । कुम्हार जो घर छोड़कर भाग जाया करता था मिट्टी के बर्तनों के अटम लगा गया है, गांव के नाई, कहार सब आप ही आप दौड़े चलेआ रहे हैं।[1] पचहत्तर वर्ष की बूढ़ी नौहरी, जिसके स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया है - न कान से सुनाई देता है न आंखों से दीखता है और न हाथ-पैरों से काम ही लेता है, भी इन सत्याग्रहियों का स्वागत करने के लिए व्याकुल है - हाय । अगर भगवान ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती, पड़ाव चढ़ा देती, पूरियां बनवाती और जब सब लोग खा चुकते तो अंजुली-भर रुपये उनकी भेंट कर देती।[2] "प्रेमचन्द के कथाकार की संवेदना, बोध और दृष्टि सुधार, स्वाधीनता तथा स्वराज्य आन्दोलन में से गुजरते हुए, उनमें से छनकर बनी थी । ये आन्दोलन उस युग की चेतना के वाहक ऐसे आन्दोलन थे जो एक ओर ऐतिहासिक

---

1. "समरयात्रा," [मानसरोवर, सातवां भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 66
2. "समर यात्रा," [मानसरोवर, सातवां भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 67

परिस्थिति के उपज थे, दूसरी ओर सामाजिक स्थिति का बोध भी जगाते थे । प्रेमचन्द का इन आन्दोलनों से प्रभावित होना स्वाभाविक था।"[1]

<u>ग्रामीण समाज और स्वराज्य का नारा</u>

ग्रामीण जनता इस विदेशी सत्ता के अचूक अस्त्रों को नहीं समझ पाती थी । सरकार इन्हें आर्थिक दुरावस्था की स्थिति को पहुंचा रही थी । ग्रामीण जनता पर किये गये सरकारी अत्याचारों का स्मरण करते हुए "समर यात्रा" शीर्षक कहानी में "सत्याग्रह" दल का नायक कहता है - आपका देवत्व आपका सीधापन आपके हक में घातक हो रहा है । खेतों का लगान बरसाती नाले की तरह बढ़ता जाता है, आप चूं भी नहीं करते । अमले और अहलकार आपको नोचते रहते हैं, आप जबान नहीं हिलाते । इसका यह नतीजा हो रहा है कि आपको लोग दोनों हाथों से लूट रहे हैं, पर आपको खबर नहीं, आपके हाथों से सभी रोजगार छिनते जा रहे हैं,आपका सर्वनाश हो रहा है, पर आप आंखें खोलकर नहीं देखते । पहले लाखों भाई सूत कातकर कपड़े बुनते थे और गुजर करते थे । अब सब कपड़ा विदेशों से आता है । पहले लाखों आदमी यहीं नमक बनाते थे । अब नमक बाहर से आता है । यहाँ नमक बनाना जुर्म है । आपके देश में इतना नमक है कि सारे संसार का दो सौ साल तक काम चल सकता है पर आप सात करोड़ रुपये सिर्फ नमक के लिए देते हैं । आपके ऊसरों में, झीलों में नमक भरा पड़ा है, आप उसे छू नहीं सकते । शायद कुछ दिन में आपके कुओं पर भी महसूल लग जाय । क्या आप यह अन्याय सहते रहेंगे ?[2] नायक ने स्पष्ट किया कि स्वराज्य का अर्थ केवल स्वतंत्रता नहीं है । उसको व्यापक रूप में देखें तो स्वराज्य चित्त की वृत्ति-मात्र है । ज्यों ही पराधीनता का आतंक दिल से निकल गया स्वराज्य मिल गया ।

---

1. प्रेमचन्द, सम्पादक, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
"प्रेमचन्द,कृति-व्यक्तित्व और कथा संसार," नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ 96-97
2. "समर यात्रा," [मानसरोवर, सातवां भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 70

भय ही पराधीनता है, निर्भयता ही स्वराज्य है ।

प्रेमचन्द की कहानियों में असहयोग आन्दोलन का चित्रण

प्रेमचन्द युग में हुए अनेक राष्ट्रीय आन्दोलन में दो आन्दोलन अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं । प्रथम सन् 1921 का "असहयोग आन्दोलन" अहिंसा जिसका प्रथम अस्त्र था तथा दूसरा सन् 1930 का "नमक बनाओ आन्दोलन" जिसमें गांधी जी ने विशाल भारतीय जनता के साथ नमक कानून को भंग किया था । इन आन्दोलनों से प्रभावित हो प्रेमचन्द की लेखनी भी अपनी स्वाभिव्यक्ति में व्यस्त थी । उन्होंने आन्दोलन के महत्व तथा तीव्रता को समझा । 3 जून, 1932 को बनारसी दास चतुर्वेदी के नाम अपने खत में वे लिखते हैं "मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं । इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों । धन या यश लालसा मुझे नहीं रही खाने भर को मिला जाता है । मोटर और बंगले की मुझे ख्वाहिश नहीं । हां यह जरूर चाहता हूं कि दो-चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही है ।"[1] उन्होंने उन सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का गहनता से अध्ययन किया जो विदेशी शासन सत्ता के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी । प्रेमचन्द का अधिकांश जीवन ग्रामीण जनता के मध्य व्यतीत हुआ था । उन्होंने अनुभव किया कि कृषकों की आर्थिक दुरव्यवस्था का कारण तत्कालीन विदेशी शासन व्यवस्था थी जिसको स्वार्थी भारतीय शोषक वर्ग का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त था । प्रेमचन्द गांधी जी द्वारा चलाये गये इन आन्दोलनों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने काफी पुरानी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । "लालफीता" कहानी में आन्दोलन

---

1. "चिट्ठी-पत्री," भाग-2, अमृतराय, पृष्ठ 77

के समस्त पक्षों का समर्थन किया गया है । इस कहानी का नायक हरिविलास भी आन्दोलन के समर्थक अपनी बीस वर्ष पुरानी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे देता है । सन् 1921 के हुए असहयोग आन्दोलन के समय ही प्रेमचन्द ने एक लेख "स्वराज्य के फायदे" लिखा जिसमें स्वराज्य प्राप्ति के विभिन्न प्रमुख साधनों का वर्णन किया गया है - "स्वराज्य का मुख्य साधन स्वावलम्बन है अर्थात् समस्त आवश्यकताओं को स्वयं ही पूर्ण कर लेना । स्वराज्य प्राप्ति का दूसरा साधन उन व्यवसायों का त्याग कर देना है जो हमारी आत्मा को दबाती हैं और उसे पराधीन, परावलम्बी बनाती हैं । अदालतें, सरकारी नौकरियां, सरकारी शिक्षा आदि हमारी आत्मा को कुचलने वाली हैं, हमारे मन के पवित्र भावों का दमन करने वाली हमें कौड़ी का गुलाम बनाने वाली, हमारी वासनाओं को भड़काने वाली संस्थाएं हैं ।

प्रेमचन्द की कहानियों में सत्याग्रह का चित्रण

"सन् 1930 में प्रेमचन्द के लेखों की पृष्ठ-भूमि में यह चिन्तन है कि स्वराज्य की निर्णायक लड़ाई शुरू हो गयी है - स्वराज्य मिलने ही वाला है । इसलिए शत्रु और मित्र के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचकर अपना पक्ष तय करना जरूरी हो गया है । प्रयास यह होना चाहिए कि भारतीय जनता व्यापक संयुक्त मोर्चा बना सके और प्रजातांत्रिक भारत का निर्माण कर सके ।"[1]

प्रेमचन्द ने अपनी "जुलूस" कहानी में सत्याग्रहियों के जुलूस का अच्छा चित्रण उपस्थित किया है । इन जुलूसों का उत्तर देने के लिए सरकार के सवार, प्यादे तथा सारजेन्ट आदि की पूरी फौज होती थी पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झण्डियां और झण्डे लिये "बन्देमातरम्" गीत गाते हुए माल के सामने से निकले । जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर बीच-रास्ते पर

---

1. "भारतीय किसान और प्रेमचन्द," डा० रामबक्ष, पृष्ठ 106

पहुंचा तो देखा आगे सवारों और सिपाहियों का पक्का रास्ता रोके खड़ा है । सत्याग्रहियों ने इनसे जुलूस के लिए रास्ता मांगा तो उसका जवाब घण्टरों से तथा घोड़ों की टापों से मिला । जुलूस के नेता इब्राहीम को दरोगा वीरबल ने अपने घोड़े की टापों से कुचल दिया । अपना एक बेटन ऐसे जोर से मारा कि उसकी आंख तिलमिला गई और वहीं ढेर हो गया । वहीं जुलूस जो शान्तिपूर्वक खड़ा था इब्राहीम का बलिदान सनसनी सोच में बदल गया । उधर सवारों के डण्डे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे । लोग हाथों पर डण्डों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े रहते थे । यह स्वाधीनता के सच्चे सेवकों का, आजादी के दीवानों का संगठित दल था, किसी के सिरों में खून बह रहा था, कितने ही हाथ जख्मी हो गये थे ।[1] लोग इन जुलूसों की हंसी उड़ाते थे । इब्राहिम के बलिदान ने इन सत्याग्रहियों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने लगे, वे लोग जो इन पर हंसते थे उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे । उनकी मनोवृत्तियां बदल गई । "जेल" शीर्षक कहानी में भी सत्याग्रहियों के विराट जुलूस का वर्णन प्रेमचन्द ने किया है । मृदुला का समस्त परिवार स्वराज्य की बलिवेदी पर समर्पित हो गया । किसान का जनाजा निकाला गया तो सिपाहियों ने और भी अनेक लाशें जनाजा निकालने के लिए तैयार कर दी । मृदुला के पति, बच्चे तथा सास के दाह संस्कार के पश्चात् जो स्वराज्य के लिए बलि हो गये, एक जुलूस निकला, लोग कहते जुलूस निकलने से क्या होता है । वास्तव में जुलूस से यह सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं, अटल हैं और मैदान से हटे नहीं हैं । हमें अपने हार न मानने वाले आत्माभिमान का प्रमाण देना था ।[2]

---

1. "जुलूस," (मानसरोवर, सातवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 51, 52, 53
2. "जेल," (मानसरोवर, सातवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 14

प्रेमचन्द की कहानियों में विदेशी बहिष्कार और "धरना" का चित्रण

सत्याग्रही नेता यदि चाहते तो अपने को निर्दोष सिद्ध कर सकते थे परन्तु वे दिखाना चाहते थे कि उन्हें नौकरशाही लोगों से किसी न्याय की आशा नहीं है। जनता सभाओं, सत्याग्रही और जुलूसों के द्वारा अपना सरकार को विरोध प्रदर्शित करती, हड़तालें की जातीं। हड़ताल से लाभ होने की अपेक्षा हानि तथा कठिनाइयां अधिक थीं क्योंकि हमारे देशवासियों के हड़ताल करने से जनता को असुविधा होती थी अतः जनता अधिकतर हड़ताल करने के पक्ष में न थी। नेता भी नहीं चाहते थे कि हड़ताल हों क्योंकि अधिकांश जनता प्रतिदिन मजदूरी करके अपनी उदरपूर्ति करती थी। विदेशी वस्तुओं और शराब के विरोध में "धरना" किया जाता था। प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में शराब तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए किये गये "धरनों" के चित्र उपस्थित किये हैं। प्रेमचन्द की "तनाव" "सुहाग की साड़ी;" "मैकू" तथा "होली का उपहार" आदि कहानियों में शराब और विदेशी वस्त्रों के प्रयोग के विरोध में किये गये "धरना" का वर्णन मिलता है। "शराब की दुकान" कहानी में भी शराबी विदेशी शराब का बहिष्कार करते दिखाये गये हैं। कांग्रेस कमेटी में यह सवाल पेश था - कि शराब और ताड़ी की दुकानों पर कौन धरना देने जाय। इन्हें पुलिस की गिरफ्तारी का तो भय था नहीं। चिन्ता थी तो उन नौजवानों की थी जो शराब के नशे में भला, बुरा न सोचकर गैर जिम्मेदारी के कार्य कर बैठते हैं। यद्यपि मारपीट से इनका नशा हिरन हो जाता था किन्तु सत्याग्रहियों के लिए इस अस्त्र का प्रयोग वर्जित था। इस समस्या का समाधान एक स्त्री मिसेज सक्सेना करती है जो स्वयं शराब की दुकान पर धरना देने को तैयार होती हैं। वही शरीफ घरानों में जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थी।[1] नवम्बर, 1930 के "हंस" में

---

1. "शराब की दुकान;" (मानसरोवर, सातवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 30-31

टिप्पणी है - पिकेटिंग आर्डिनेंस । इसमें उन्होंने लिखा, "इस आन्दोलन का और कोई फल निकले या न निकले, लेकिन एक फल तो अवश्य निकला, कि नौकरशाही अपने नग्न रूप में जाहिर हो गयी । अब किसी अधिकारी को यह कहने का मुंह नहीं है कि अंग्रेज लोग भारत को न्याय और सभ्यता का सबक सिखाने के लिए उस पर राज्य कर रहे हैं ।"[1]

"सुहाग की साड़ी" कहानी में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाती है । "विदेशी कपड़ों की होलियां जलाई जा रही थी । स्वयंसेवकों के जत्थे के जत्थे भिखारियों की भांति द्वारों पर खड़े होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा मांगते थे और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था जहां उन्हें निराश होना पड़ा हो । नयनसुख नयनदुख, मलमल-मनमल और तनजेब तनबेध हो गये थे । रतन सिंह ने आकर गौरा से कहा लाओ अब सब विदेशी कपड़े संदूक से निकाल दो दे दूं ।[2] उनके अशिक्षित साईस रामटहल तथा महरी केसर ने भी अपने सभी विलायती कपड़े स्वयंसेवकों को होली जलाने के लिए दे दिये । रतन सिंह ने भी अपनी पत्नी गौरा के विरोध करने पर भी विदेशी "सुहाग की साड़ी" को अपने घर में रखना मंजूर न किया । इन आन्दोलनों में महिलाओं तथा विद्यार्थी वर्ग ने पूर्ण सहयोग दिया था ।

स्वतंत्रता आन्दोलनों का ग्रामवासियों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा । शराब की दुकानों पर जब वालिन्टियर धरना देते तो सर्वप्रथम शराब का बहिष्कार ग्रामवासी ही करते । स्वराज्यवादियों का ग्रामीण जनता पर गंभीर प्रभाव पड़ता क्योंकि ग्रामीण मनुष्य अत्यन्त सरल तथा भावुक होता है । "दुस्साहस" कहानी में लखनऊ शहर के मुंशी मैकूलाल मुख्तार

---

1. "विविध प्रसंग," भाग-2, अमृत राय, पृष्ठ 67, 68
2. "सुहाग की साड़ी." [मानसरोवर, सातवां भाग], प्रेमचन्द, पृ030,31

विदेशी नीतियों से जरा भी प्रभावित नहीं होते जबकि ग्रामीण व्यक्ति अलगू, रामधनी, बेचन, झिनकू तथा ईदू सत्याग्रहियों के कहने से शराब का बहिष्कार सदैव के लिए कर देते हैं मुंशी मैकूलाल शराब पीने के लिए इनसे आग्रह करते हैं किन्तु वे इसे देश के प्रति विश्वासघात कह कर स्पर्श भी पाप समझते हैं। मुंशी मैकूलाल अलगू से जब पूछते हैं कि तुम मेरे नौकर हो या स्वराज्यवालों के "तो अलगू मुंशी जी से स्पष्ट शब्दों में कह देता है "मुंह में कालिख लगाने के लिए नौकर थोड़े ही हूं।" ग्रामवासी समझते थे कि देशहित के लिए शराब का स्पर्श भी जीवन का कलंक है।

प्रेमचन्द की कहानियों में राजनैतिक जीवन के अन्य पक्ष

इन आन्दोलनों का विरोध और दमन सरकार द्वारा ही नहीं, वरन् उसके सहायकों द्वारा भी किया जाता था। विदेशी सरकार द्वारा इन आन्दोलनों का विरोध करना तो स्वाभाविक प्रतीत होता था क्योंकि वह अपनी शासन व्यवस्था बनाये रखना चाहती थी, किन्तु स्वदेशीय भी इसका विरोध करने में व्यस्त थे। इनके विरोध करने का प्रमुख कारण इनके स्वार्थों की पूर्ति था "आदर्श विरोध" कहानी के महाशय दया कृष्ण मैहता ऐसे ही व्यक्ति हैं जो अपने स्वार्थों के कारण इन आन्दोलनों का विरोध करते हैं। वाइसराय ने उन्हें अपनी कार्यकारिणी सभा का मेम्बर नियुक्त कर दिया था, उन्होंने जीवन का स्वर्ग मिल गया था काउन्सिल द्वारा अपने ऊपर अंगुली उठाये जाने के भय से वे बढ़ते हुए सरकारी व्यय के विषय में काउन्सिल में कुछ नहीं कहते। आप व्यय के अन्तर्गत की गई वेतन वृद्धि से उनके साथियों को लाभ होगा। अतः इस विषय में भी कोई विरोध काउन्सिल में नहीं करते। उनके पुत्र बालकृष्ण के आदर्शों में इसी कारण विरोध है वह उन्हें जातिद्रोही कहता है, धूर्त मक्कार, ईमान बेचने वाला तथा कुलद्रोही तक,

करता है । इसीलिए वह "लन्दन टाईम्स" में अपने पिता की वक्तृता पर असन्तोष तथा विरोध प्रकट करता है तथा आत्महत्या कर लेता है ।[1]

"सत्याग्रह" कहानी में राय हरनन्दन साहब, राजालालचन्द, और खां बहादुर मोलवी तथा बहबूब अली अपने हितों तथा स्वार्थों की पूर्ति के कारण ही सत्याग्रहियों द्वारा हड़ताल का आह्वान किये जाने का विरोध करते हैं तथा भरसक यही प्रयत्न करते हैं कि किसी भी प्रकार हड़ताल न हो हड़ताल रोकने के लिए वे सत्याग्रहियों के विरोध में मोटेराम पंडित को अनशन पर बैठाते हैं । पंडित जी भी सरकारी पिट्ठुओं के द्वारा दिये गये लालच के कारण अनशन पर बैठ गये ।[2] "विचित्र होली" में भी ऐसे ही व्यक्तियों का वर्णन मिलता है जो व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण सरकार का समर्थन करते हैं । जमींदार सरकार के प्रमुख सहायक जो किसानों का दमन तथा सरकार का समर्थन करते थे । "जुलूस" शीर्षक कहानी में दरोगा वीरपाल भी सत्याग्रहियों के जुलूस को आगे बढ़ने से रोकते हैं उनके लिए यह अवसर कारगुजारी दिखाने का था जिससे उनकी आगे पदोन्नति हो सकती थी । अतः इन्होंने जुलूस पर अपना घोड़ा चढ़ा दिया तथा सत्याग्रहियों पर हण्टर बजाने प्रारम्भ कर दिये । जिससे सत्याग्रहियों का नेता इब्राहीम मारा गया । "पत्नी से पति" भी ऐसी ही कहानी है जिसमें मिस्टर सेठ पर अंग्रेजी रंग चढ़ा हुआ था ।अतः वे अपनी पत्नी से कहते हैं - "जरा इन सिर फिरों को देखों कपड़े जला रहे हैं । यह पागलपन, विद्रोही और उन्माद नहीं तो और क्या है । किसी ने सच कहा है हिन्दुस्तानी को न अक्ल आई है, न आयेगी ।[3] उन्हें अपने हिन्दुस्तानी होने पर भी खेद होता है, वे कहते हैं कि जब आठ आने गज में बढ़िया कपड़ा मिलता है तो

---

1. "आदर्श विरोध," (मानसरोवर,आठवां भाग),प्रेमचन्द, पृष्ठ 237
2. "सत्याग्रह," (मानसरोवर,तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 115
3. "पत्नी से पति," (मानसरोवर, सातवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 18

क्यों मोटा टाट खरीदें । न जाने क्यों गवर्नमेंट ने इन दुष्टों को यहां जमा होने दिया । अगर मेरे हाथ में अधिकार होता तो सबों को जहन्नुम रसीद कर देता तब आटे-दाल का भाव मालूम होता ।[1] वे अपनी पत्नी गोदावरी को भी कांग्रेस सभा में नहीं जाने देते । जब उन्हें सूचना होती है कि गोदावरी ने कांग्रेस सभा में रुपया दिया है तो वे उससे कहते हैं - "मुझे तुम्हारी अक्ल पर अफसोस आता है । जानती हो तुम्हारी इस उद्दण्डता का क्या नतीजा होगा? मुझसे जवाब तलब हो जायेगा । बतलाओ, क्या जवाब दूंगा ? जब यह जाहिर है कि कांग्रेस सरकार से दुश्मनी कर रही है तो कांग्रेस की मदद करना तो सरकार के साथ दुश्मनी करना है । सरकारी नौकर के लिए कांग्रेस की मदद करना चोरी तथा डाके से भी बुरा है ।

क्रांतिकारियों के नेतृत्व की समस्या

अब आवश्यकता सत्याग्रहों तथा आन्दोलनों की नहीं वरन् क्रांतिकारी नेताओं की थी जो स्वतंत्रता को बागडोर अपने हाथों में सम्भाले । स्वतंत्रता प्राप्ति करने के लिए सबसे बड़े अंग्रेजी अफसर का सफाया करना आवश्यक है । क्योंकि जितने भी अत्याचार सरकार करती है उसके लिए हर क्षेत्र के बड़े अफसर ही जिम्मेदार होते हैं । वह उस मशीन का खास पुर्जा होता है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता के साथ बर्बाद कर रहा है । धर्मवीर इसी मशीन के पुर्जे को नष्ट करने का काम अपने हाथों में लेता है तथा पुलिस के सबसे बड़े अफसर का, जिसके हुक्म से कान्सटेबिल, सब-इंस्पेक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि भारतीयों पर अत्याचार करते हैं, कत्ल करने का निश्चय करता है, अब समय अंग्रेजों के सामने हाथ जोड़ने का या अनशन करने का नहीं था वरन् आवश्यकता थी ऐसे महान क्रांतिकारी नेताओं की जो विदेशी सरकार के खून के प्यासे हों । सत्याग्रह में अन्याय का दमन करने की शक्ति है" - समय के साथ

---

1. "पत्नी से पति," (मानसरोवर सातवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 18

यह सिद्धांत भी व्यर्थ हो गया । देश के बड़े-बड़े नेताओं के हाथ में भी कुछ नहीं रहा । वे बाह्य रूप से देश के परम भक्त थे परन्तु वे मूलतः शोषक ही थे और उनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही केन्द्रित रहती है । प्रेमचन्द ने इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है - "सभी खादधर पहनने वाले और जेल जाने वाले देवता नहीं हैं उससे भी अक्सर वे बड़े-बड़े हथकण्डे बाज लोग शामिल हैं जो जेल भी किसी न किसी स्वार्थ से ही गये थे । लेकिन ऐसे भी देशभक्त थे जो अपने प्राणों की परवाह न कर के दूसरों के जीवन की रक्षा करना अपना परमधर्म मानते थे वे भारतीय जनता की रक्षार्थ अंग्रेज अधिकारियों तथा उसके पिट्ठुओं का खून करने में लेशमात्र भी संकोच न करते थे । "प्रतिशोध" कहानी में ईश्वरदास मिस्टर व्यास ने एक राजनीतिक मुकदमें की पैरवी करते हुए पुलिस को झूठी शहादतों के तैयार करने में मदद की थी तथा अनेकबेगुनाह तथा बेकस नौ-जवानों को बड़ी बेदर्दी तथा बेरहमी से तबाह किया । मिस्टर व्यास ऐसे ही स्वार्थी व्यक्ति थे जिन्हें बेगुनाहों को सजा दिलाने में जरा भी संकोच न हुआ तथा अंग्रेज अधिकारियों के सहायक सिद्ध हुए, लेकिन देशभक्त ईश्वरदास को यह सहन न हो सका तथा उसने मिस्टर व्यास का कत्ल कर दिया । मिस्टर व्यास को भी अदालत वाले उनके करतूतों पर कोसते थे किन्तु ईश्वरदास की आत्मा सिर्फ कोसने तथा गालियां देने से शांत नहीं होती थी क्योंकि ईश्वरदास जानते थे कि मिस्टर व्यास ने जानबूझकर-समझबूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानों को बेचिराग कर दिया जिसके कारण कितनी ही मातायें अपने बेटों के लिए खून के आंसू रो रही थीं कितनी ही औरतें रंडापे की अग्नि में जल रही थीं ।[1]

---

1. "प्रतिशोध," (गुप्तधन, भाग दो), प्रेमचन्द, पृष्ठ 58-59

राष्ट्र प्रेम तथा राष्ट्र विरोधी भावनाओं का चित्रण

प्रेमचन्द की "भाड़े का टट्टू" शीर्षक कहानी भी ऐसे ही स्वार्थ लोलुप यशवन्त तथा सच्चे भारतीय क्रांतिकारी रमेश की कथा को प्रस्तुत करती है। यशवन्त अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए देश रक्षक, सच्चे समाज सेवक तथा क्रांतिकारी रमेश को डाके के झूठे अभियोग में जेल भिजवा देता है। यशवन्त देश के लिए अपने स्वार्थ का त्याग नहीं कर पाता। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन काल में रमेश जैसे देशभक्तों की कमी भी न थी जो प्रजा का पक्ष लेकर ब्रिटिश सरकार को चुनौती देना अपना कर्तव्य समझते थे। रमेश समाचार पत्रों के माध्यम से जनता के मध्य क्रांति के बीज अंकुरित करता था तथा सरकारी अधिकारियों के मध्य खलबली उत्पन्न करता। वह देश वासियों का स्वतंत्रता संग्राम का सच्चा नेता था। सरकार की स्थिति ये थी कि उनके शासन काल में यदि कोई भारतीय स्वतंत्र विचार रखता तो उसे खूनी तथा कातिल समझा जाता और जेल के सीखचों में सड़ने के लिए डाल देते थे। सच्चे क्रांतिकारी इसे किसी भी प्रकार सहन न कर सकते थे। इस निरंकुशता के प्रतिक्रिया स्वरूप क्रांतिकारी और भी विद्रोही हो उठते। ऐसी स्थिति में नेता वर्ग और भी क्रियाशील हो उठता।" ज्यों-ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती थी त्यों-त्यों उसका भी जोश बढ़ता जाता था। रमेश बोज कहीं न कहीं व्याख्यान देता और उसके प्राय सभी व्याख्यान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे - रमेश ने स्वतंत्र मनोभावों को गुप्त रखना ही सीखा था। प्रजा का नेता बनकर जेल और फांसी से डरना क्या। जो आपत्ति आनी हो आवे। वह सब कुछ सहन करने को तैयार बैठा था। अधिकारियों की आंखों में भी वही सबसे ज्यादा गड़ा हुआ था।[1]

---

1. "भाड़े का टट्टू," [मानसरोवर, भाग तीन], प्रेमचन्द, पृष्ठ 308

स्वार्थ तथा कर्मशून्य यशवन्त अपनी स्वार्थान्धता के कारण अपनी आत्मा का हनन कर देता है वह अंतर्द्वंद्व की स्थिति में दृढ़ स्वर में अपने प्रिय मित्र रमेश को सात वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दे देता है। रमेश जेल से निकल कर पक्का क्रांतिकारी बन गया। जेल की अंधेरी कोठरी में दिनभर के कठिन परिश्रम के बाद वह दीनों के उपकार और सुधार के मंसूबे बांधा करता था - जेल से निकलते ही उसने सामाजिक क्रांति की घोषणा कर दी। गुप्त सभाएं बनने लगीं शस्त्र जमा करने के लिए उसने डाके डालने प्रारम्भ कर दिये। क्रांतिकारी नेता पुलिस पर भी हाथ साफ करते। अपनी शक्ति को विदेशी शासन के विरुद्ध अधिकाधिक बढ़ाने का प्रयास करते।[1]

ब्रिटिश सरकार की दमन तथा कूटनीति का चित्रण

विदेशी शासन व्यवस्था राष्ट्रीय आन्दोलनों को तथा आन्दोलनकारियों का दमन करने के लिए हर संभव प्रयास करती तथा बड़े-बड़े राजा महाराजा, रियासतों के दीवान तथा जमींदार आदि सदैव सरकार की चापलूसी में लगे हुए अपने स्वार्थों की पूर्ति करते रहते। ये सरकार के सहायक वर्ग में गिने जाते तथा यथा संभव राजभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते। राजाओं की रियासतें यद्यपि स्वतंत्र होती थी किन्तु यहां पर भी सरकारी प्रतिनिधि सदैव उपस्थित रहते जो इनकी गतिविधियों का निरीक्षण तथा नियंत्रण करते। ये रियासतें देशभक्त नेताओं का दमन करने में सरकार की सहायता करतीं तथा अपने सेवकों को यथा संभव तरक्कियां प्रदान करते। जो जनता की सहायता करता उसको देशद्रोही समझा जाता तथा उसे रियासत में रहने का भी अधिकार प्राप्त न होता। वास्तविक देशभक्त वहीं माना जाता जो जनता का हनन करता तथा रियासत व सरकार की जनता

---

1. "भाड़े का टट्टू," (मानसरोवर, भाग तीन), प्रेमचन्द, पृष्ठ 312

पर अन्याय करने में सहायता करता । "रियासत का दीवान" कहानी में महाशय मेहता की जो रियासत में ईमानदारी तथा परिश्रम से काम करते हैं, पदोन्नति नहीं हो पाती । उनकी पदोन्नति तभी होती है जबकि वह पोलिटिकल एजेण्ट के रियासत के दौरे पर आने के समय रियासत के राजा को जनता से बहुत बड़ी संख्या में धन एकत्र करके देते हैं । जनता पर भी अनेक अत्याचार किये जाते हैं । बेगार ली जाती है तथा जबरन चन्दा वसूल किया जाता है । राजा साहब पोलिटिकल एजेण्ट को प्रसन्न करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते हैं यदि पोलिटिकल एजेण्ट रियासत के दौरे से प्रसन्न होकर वापस जाता है तो उनको तीन वर्ष तक अपनी जनता पर मनमाना अत्याचार तथा नियंत्रण करने का अवसर प्राप्त हो जायेगा । राजा साहब भोग-विलास में पड़े रहते थे, राज्य संचालन का सम्पूर्ण भार रियासत के दीवान मिस्टर मेहता पर ही था । रियासत के सभी अमले और कर्मचारी मिस्टर मेहता, को दण्डवत करते, बड़े-बड़े रईस नजराने देते । मिस्टर मेहता को रियासत के दीवान होने के नाते वो समस्त अधिकार प्राप्त थे जो जनता के दमन तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए आवश्यक थे।

ब्रिटिश शासन के शोषण का चित्रण

"प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में ब्रिटिश शासन के अमूर्त और अदृश्य रूप का ही चित्रण नहीं किया है, बल्कि उसे ठोस और अनुभवगत रूप में उपस्थित किया है । इस तरह किसानों के शोषण में लगे साम्राज्यवादीतंत्र को उघाड़ कर सामने रखा है । इस प्रक्रिया में उन्होंने हाकिम, कचहरी, पुलिस और तहसील की कार्य पद्धति को चित्रित किया है । अंग्रेज इन्हीं के माध्यम से किसानों का शोषण करते हैं । लेकिन ये राजकर्मचारी "माध्यम" मात्र ही नहीं हैं बल्कि इनका भी अपना एक अलग अस्तित्व है ।[1]

---

1. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान," रामबक्ष, पृष्ठ 186

विदेशी शासन व्यवस्था की नींव शोषण पर टिकी हुई थी । भ्रष्टाचार और अन्याय इसके प्रमुख अंग थे । अत्याचारों को सरकार का संरक्षण प्राप्त था । "नमक का दारोगा" तथा "दण्ड" कहानियों में इस सत्य की अभिव्यक्ति हमें मिलती है । ब्रिटिश शासन में कठोरता तथा असभ्यता शासन का ही अंग समझी जाती थी । वहां अदालतों के फैसले भी उच्च वर्ग के ही पक्ष में होते थे । "दण्ड" कहानी में मिस्टर सिन्हा का न्याय जगत ब्राह्मण के पक्ष में न होकर राजा साहब शिवपुर के मुख्तारसत्यदेव के पक्ष में ही होता है । सत्यदेव धन सम्पन्न शोषक वर्ग का प्रतीक है गरीबों पर अत्याचार करना इनका कार्य है । मिस्टर सिन्हा भी उच्च वर्गीय सरकारी वकील हैं । सत्यदेव का यह कथन है कि गरीबों पर किये गये अत्याचारों की अभिव्यक्ति करता है - "आप जानते हैं, सीधी अंगुली घी नहीं निकलता, जमींदार को कुछ न कुछ सख्ती करनी ही पड़ती है ।"[1] किन्तु इस कहानी में शोषित वर्ग भी जागृत होता प्रतीत होता है इसमें अब शोषक वर्ग के अत्याचारों को सहन करने की शक्ति नहीं रही है वह स्पष्ट इसका विरोध करने के लिए तत्पर है किन्तु फिर भी पैसे की गर्मी के कारण न्याय इसी वर्ग की ओर जाता है । सत्यदेव मिस्टर सिन्हा के कहने पर कि - "आप शायद अपने इलाके में गरीबों के मारे अब इलाके में हमारा रहना मुश्किल हो रहा है आप जानते हैं । सीधी उंगली घी नहीं निकलता । जमींदार को कुछ न कुछ सख्ती करनी ही पड़ती है । मगर अब यह हाल है कि हमने जरा भी चूं कि तो उन्हीं गरीबों की त्यारियां बदल जाती हैं सब मुफ्त की जमीन जोतना चाहते हैं । लगान मांगिये तो फौजदारी का दावा करने को तैयार । ... अगर जगत पाण्डे यह मुकदमा जीत गया तो हमें बोरिया-बधना छोड़कर भागना पड़ेगा । अब हुजूर ही बसाये तो बस सकते हैं । राजा साहब ने हुजूर को सलाम कहा है और अर्ज

---

1. "दण्ड" (मानसरोवर, तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 132

की है कि इस मामले में जगत पाण्डे की ऐसी खबर ले कि वह भी याद करे ।"[1] इस सरकारी अधिकारी तथा रियासती राजाओं की सांठगांठ से न्याय शोषक वर्ग के पक्ष में ही जाता गरीब इस न्याय से वंचित रह जाते ।

"ब्रिटिश काल में देश की दशा दिन पर दिन खराब होती चली जा रही थी । गवर्नमेंट कुछ नहीं करती । बस खाना और मौज उड़ाना उसका काम था" जनता का शोषण उसके शासन का एक अंग बन गया था "ऋषियों की भारत भूमि भिक्षुओं की भूमि होती जा रही थी । जहां देखिये, वहां रेवड़ के रेवड़ और दल के दल भिखारी । यह गवर्नमेंट की लापरवाही की बरकत है, इंगलैण्ड में कोई भिक्षुक भीख नहीं मांग सकता - यह पराधीन गुलाम भारत है जहां ऐसी बातें इस बीसवीं सदी में भी संभव थी । शक्ति का अपव्यय हो रहा था ।[2]

पराधीन भारत में अनेक ऐसी शक्तियां थीं जो सरकार को जनता का शोषण करने में सहायता दे रही थीं । अत: स्वराज्य प्राप्त करने के लिए इन विरोधी शक्तियों को समूल नष्ट करना परमावश्यक था । ये शक्तियां आनन्द एवं विलासमय जीवन व्यतीत कर रही थीं । आन्दोलन-कारियों का ध्यान इन शोषक शक्तियों की ओर विशेष रूप से था । "विश्वास" कहानी में मिस जोशी शोषक वर्ग की प्रतीक है जो सरकार की सहयोगी शक्ति है । क्रांतिकारी तथा अहिंसाव्रतधारी नेता मिस्टर आपटे का ध्यान उनकी तरफ विशेष रूप से आकर्षित होता है । विदेशी शोषकों का इस कहानी में अच्छा चित्र उभरा है - "आपटे ने मंच पर खड़े होकर पहले जनता को शांत चित्त रहने और अहिंसाव्रत पालन करने का आदेश

---

1. "दण्ड" (मानसरोवर, तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 132
2. "कानूनी कुमार," (मानसरोवर, दूसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 289

दिया । फिर देश की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करने लगे । सहसा उनकी दृष्टि सामने मिस जोशी के बरामदे की ओर गई तो उनका प्रजा दु:ख पीड़ित हृदय तिलमिला उठा । यहां अगणित प्राणी अपनी विपत्ति की फरियाद सुनाने के लिए जमा थे और वहां मेजों पर चाय और बिस्कुट, मेवे और फल, बर्फ और शराब की रेल-पेल थी । वे लोग इन अभागों को देख-देख हंसते और तालियां बजाते थे ।[1]

आन्दोलनकारियों के आन्दोलन को असफल करने का हर संभव प्रयास ब्रिटिश सरकार उसके सहयोगियों - जमींदारों, राजाओं आदि के द्वारा होता । "विश्वास" कहानी के नायक मिस्टर आपटे सरकार के लिए सिर दर्द बने हुए थे । जनता के मध्य जागृति उत्पन्न करने वाले भाषण तथा आन्दोलनकारियों के क्रियाकलाप सरकार के अहित में होते थे अत: उन्हें कुचला जाना अत्यावश्यक था । आपटे द्वारा दिये गये भाषण जब सरकार की वास्तविकता स्पष्ट करते तो अशास्त्र सिपाहियों के दल में हलचल मच गई । पुलिस के अफसर ने जनता की आम सभा भंग करने का आदेश दे दिया समस्त नेताओं को पकड़ लिया गया । पुलिस ने डण्डे चलाने शुरु किये और कई सिपाहियों के साथ जाकर अफसर ने मिस्टर आपटे को गिरफ्तार कर लिया क्योंकि वही उनका वास्तविक शत्रु था । आन्दोलनकारियों पर राजद्रोह के मुकदमें चलाकर जेल में भेज दिया जाता, अनेक यातनाएं जेल में इन्हें दी जाती। आन्दोलनकारियों को सरकार अपने पक्ष में करने के लिए अनेक प्रलोभन देती । उन्हें अपने बंधन में जकड़ने के लिए अनेक षड्यंत्र रचती । आन्दोलनकारी भी वही होते जो या तो स्वयं दयनीय तथा आर्थिक दुरावस्था में जीवन व्यतीत करते होते अथवा जनता के कष्टों से व्यथित होते । मिस्टर आपटे भी ऐसे ही आन्दोलनकारी थे - "आपटे का मकान गरीबों के एक दूर मुहल्ले में था -

---

1. "विश्वास," [मानसरोवर,तीसरा भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 7

मिस जोशी आपटे के घर की सादगी को देखकर दंग हो गई । एक किनारे पर चारपाई पड़ी हुई थी, एक टूटी आलमारी में कुछ किताबें चुनी हुई थी, फर्श पर लिखने का डेस्क था और एक रस्सी की अलगनी पर कपड़े लटक रहे थे । ... मिस जोशी को देखकर आपटे जरा चौंके, फिर खड़े होकर उनका स्वागत किया और सोचने लगे कि कहाँ बैठाऊं । अपनी दरिद्रता पर आज उन्हें जितनी लज्जा आई, उतनी और कभी न आई थी ।[1] आन्दोलनकारियों का जीवन अपने लिए नहीं वरन् देश के लिए था । परिवार के नाम पर देश ही उनका परिवार था जनता ही उनके पारिवारिक सदस्य थे । जनता तथा देश का सुख ही उनका सुख था । न यश की कामना थी न धन की । उत्सर्ग के निमित्त ही उनका जीवन था । ब्रिटिश सरकार इन्हें राजद्रोही की संज्ञा से अभिहित करती परन्तु वास्तव में राजद्रोही न होकर अन्याय के द्रोही, दमन के द्रोही तथा अभिमान के द्रोही थे ।

प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामजीवन के राजनीतिक पक्ष का विश्लेषण किया गया है । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेमचन्द का युग प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध का मध्यवर्तीकाल है । इस काल में देश में राजनीति क्षेत्रीय बहुसंख्यक आन्दोलन हुए । प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् देश में राजनीतिक चेतना का व्यापक आधार पर जागरण हुआ । महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने इसका प्रसार सुदूर ग्रामों तक किया । इसका परिणाम यह हुआ कि ग्राम जीवन में राजनीति क्षेत्रीय सक्रियता परिलक्षित होने लगी । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में ग्राम जीवन के राजनीतिक पक्ष का जो चित्रण किया है वह उन सभी विशेषताओं का निरूपण करता है जो इस संदर्भ में महत्त्व रखती है । इस अध्याय के आरम्भ में यह संकेत किया गया है कि प्रेमचन्द की

---

1. "विश्वास," (मानसरोवर, तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 10-11

राजनीतिक विचारधारा पर सर्वाधिक प्रभाव गांधीवाद का पड़ा था । उसी से प्रेरित और प्रभावित होकर उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी भी छोड़ दी थी । गांधी दर्शन की व्यावहारिक परिणति उनकी लिखी हुई "आदर्श विरोध" तथा "लाग-डाट" आदि कहानियों में मिलती है। प्रेमचन्द की कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलन का भी व्यापक रूप में चित्रण हुआ है । इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य आधार गांधीवादी स्वदेशी आन्दोलन, सत्याग्रह, मद्य:निषेध तथा असहयोग आदि हैं । "जागरण" नामक पत्र के सम्पादकीय में इस प्रसंग में प्रेमचन्द ने स्वराज्य संबंधी धारणा का स्पष्टीकरण किया है । "समर यात्रा" कहानी में प्रेमचन्द ने ग्रामीण समाज की राजनीतिक पृष्ठभूमि में स्वराज्य की भावना का व्यवहारिक विश्लेषण किया है । इसी प्रसंग में असहयोग आन्दोलन का भी उल्लेख किया गया है जो गांधीवाद राजनीतिक दर्शन का एक उल्लेखनीय पक्ष है । "लालफीता," "समर यात्रा" तथा "लाग-डाट" आदि कहानियों में ग्रामीण क्षेत्रों में इस आन्दोलन के व्यावहारिक स्वरूप का निदर्शन किया गया है । प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियों में सत्याग्रह का भी व्यावहारिक निरूपण है जो गांधीवादी विचार दर्शन के पूर्ण स्वराज्य की मांग का एक विशिष्ट पक्ष है । "जेल," "जुलूस" तथा "समर यात्रा" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने यह संकेत किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में इस संदर्भ में जो आन्दोलन हुए थे उनका कितनी क्रूरता में दमन किया गया था । इस दमन चक्र के प्रभाव स्वरूप ये आन्दोलन और भी तीव्रगति से संचालित होने लगा क्योंकि उससे ग्रामीण जनता की विद्रोही भावना जागृत हो गई थी । न केवल पुरुष वर्ग वरन् महिला वर्ग ने भी इसमें किने सक्रिय रूप से भाग लिया । इसका चित्रण मृदुला नामक पात्री के आधार पर "जेल" कहानी में प्रेमचन्द ने किया है । जिसका सम्पूर्ण परिवार इस आन्दोलन की बलि चढ़ जाता है । "शराब की दुकान," "मैकू," "जबान," "पत्नी से पति," "आहुति" तथा "दुस्साहस"

आदि कहानियों में विदेशी बहिष्कार तथा धरना आदि से संबंधित विभिन्न चित्र हैं। "होली का उपहार" तथा "सुहाग की साड़ी" में जहां एक ओर विदेशी बहिष्कार का सशस्त्र चित्र है। "अवान" कहानी में कांग्रेस महिला स्वयंसेविका द्वारा पिकेटिंग का चित्र है। "लाग-डाट" कहानी में चौधरी बेचन की राजनीतिक चेतना का निरूपण है। "समर-यात्रा" में बूढ़ा महिला इस आन्दोलन में आत्मबलि अर्पित करती हुई देखी गई है। "दुस्साहस" कहानी में भी विभिन्न स्तरों के ग्रामीण वर्गों में राजनीतिक चेतना का निरूपण है। इसी प्रसंग में यहां पर इस तथ्य की ओर संकेत करना भी असंगत न होगा कि प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियों में राजनीतिक जीवन के अन्य अनेक पक्षों का भी विशद रूप में चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ - "आदर्श विरोध" कहानी में दयाकृष्ण मेहता की राजनीतिक दासता और जाति द्रोही वृत्ति के विरुद्ध तीव्र के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया का चित्रण है। "सत्याग्रह" में राय साहब तथा अन्त अभिजात वर्गीय देशद्रोहियों के विरुद्ध जनजागरण का अंकन है। "जुलूस" तथा विविध्र होली में गांधीवादी हृदय परिवर्तन के सिद्धांत का चित्रण है। "पत्नी से पति" प्रमुख पात्र मिस्टर सेठ का हृदय परिवर्तन उसकी पत्नी, गोदावरी के राष्ट्र प्रेम के फलस्वरूप दर्शाया गया है। "कातिल" कहानी में भी विदेशी शासन के निर्मूलन की कृति संकल्पता परिलक्षित होती है। "प्रतिशोध" कहानी में व्यास आदि पात्रों के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि ग्रामीण समाज में राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा निर्देश करने के लिए विवेकशील नेताओं का अभाव था। "भाड़े का टट्टू" में प्रेमचन्द ने यह संकेत किया है कि जहां एक ओर असंख्य लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया वहां दूसरी ओर कतिपय देश-द्रोहियों ने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर इस आन्दोलन के विरुद्ध सक्रियता प्रदर्शित की। इसी प्रसंग में ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र तथा कूटनीति का

निरूपण भी प्रेमचन्द ने किया है । "रियासत का दीवान" जैसी कहानियों में उन्होंने यह संकेत किया है कि ब्रिटिश सरकार किसी भी मूल्य पर और कितना भी नरमेध करके अपनी सत्ता को भारत में बनाये रखने के लिए कृत संकल्प थी । "दण्ड" कहानी में ब्रिटिश शासन के इसी शोषक रूप का चित्रण है । "नमक का दारोगा" कहानी भी प्रकारान्तर से समकालीन अन्याय और भ्रष्टाचार का निदर्शन करती है । "आदर्श विरोध," "कानूनी कुमार," "विश्वास" तथा "आहुति" कहानियों में ब्रिटिश शोषण के बहुसंख्यक और अमानवीय रूपों की व्यंजना है । संक्षेप में प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में ग्राम जीवन के राजनीतिक पक्ष से संबंधित जो उदाहरण दिये गये हैं वे इस तथ्य का उद्घोष करते हैं कि प्रेमचन्द की राजनीतिक विचारधारा गांधीवादी दर्शन से अनुप्रमाणित थी और उसका व्यावहारिक निदर्शन उनकी कहानियों में समकालीन ग्रामीण जीवन में राजनीतिक चेतना के माध्यम से निदर्शित हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन का आर्थिक पक्ष

प्रेमचन्द की कहानियां : भारतीय ग्रामीण जीवन का आर्थिक पक्ष

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द की कहानियों का अपना विशेष स्थान है उन्होंने अपनी कहानियों की विषयवस्तु सामान्य जन-जीवन के बीच से चुनी है । उनकी कहानियों में तत्कालीन समाज तथा उस समय की विचारधारा का स्पष्ट रूप दिखाई देता है । प्रेमचन्द का समस्त जीवन गांव की धरती पर ही पला पूला तथा उनका बचपन कटु अनुभवों आर्थिक कठिनाइयों एवं दुरव्यवस्था की कठिन परिस्थितियों में बीता। अत: इनकी कहानियों में युग की सत्यता तथा गहनता के दर्शन होते हैं । इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द का युग भारत की राजनीति तथा आर्थिक दास्ता की कहानी रहा है । प्रेमचन्द निम्न मध्य वर्ग में पले थे । अत: जीवन के प्रति यही अनुभव इनकी कहानियों में साकार हो उठा है । इनका जीवन इनलप पिलो के गद्दों, बड़े महलों में न बीतकर ये दाने-दाने को तरसते, भूख से तड़पते, वस्त्रों से रहित तथा मृत्यु से संघर्ष करते हुए ग्राम-निवासियों के मध्य व्यतीत हुआ । जिसे देखकर प्रेमचन्द का हृदय सदैव इस वर्ग के प्रति सहानुभूति के लिए तत्पर रहता था । यही कारण है कि इनकी अधिकांश कहानियों में ग्रामीण जीवन का यही सत्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । इन्होंने ग्राम के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक तथा आर्थिक सभी पक्षों का विवेचन किया है ।

प्रेमचन्द ने पूस की रात कहानी में बहुत ही मार्मिक दृश्य स्पष्ट किया है । "पूस की अंधेरी रात : आकाश पर तारे भी ठुठुरते हुए मालूम होते थे । हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी चादर ओढ़े कांप रहा था । खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं-कूं कर रहा था । दो में से एक को भी नींद नहीं आती थी ।"[1]

---

1. "पूस की रात," [मानसरोवर, भाग-1], प्रेमचन्द, पृष्ठ 155

हल्कू की आर्थिक दैनीय स्थिति भारत वर्ष के कृषक वर्ग की स्थिति का प्रतीक है । यह कृषक अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है । भारत का किसान कितना कठिनाइयों तथा तपस्यामय जीवन व्यतीत करता है । जीवनभर संघर्ष करके भी वह अपने जीवन में कुछ नहीं पाता । उसके परिश्रम का परिणाम तो अन्य लोगों को प्राप्त होता है । वह तो मौन रहकर समस्त कठिनाइयों को सहन करता है । किंतु उसके हृदय में यह प्रश्न लगातार विद्रोह की भावना जागृत करता है कि कि उसके परिश्रम का फल उसको न मिलकर दूसरे वर्ग को प्राप्त हो रहा है । इसलिए हल्कू अपने इन विचारों को व्यक्त करते हुए कह देता है - "यह खेती का मजा है । और एक-एक भगवान ऐसे पड़े हैं जिनके पास जाड़ा जाये तो गर्मी से घबड़ाकर भागे । मोटे-मोटे गद्दे लिहाफ, कम्बल । मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाये, तकदीर की खूबी है । मजदूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें ।"[1] यह स्थिति केवल हल्कू का ही नहीं वरन् समस्त ग्राम की यही दशा है ।

"सपेद खून" कहानी के जोधाराम आर्थिक विपन्नता की स्थिति में अन्न की सूरत भी नहीं देख पाता । गहने,कपड़े, बर्तन भाँडे सब पेट में समा गये । गाँव का साहूकार भी पतिव्रता स्त्रियों की भाँति आँखे चुराने लगा । चारो तरफ दरिद्रता और क्षुधा पीड़ा के दारुण दृश्य ग्राम में दिखाई देते हैं । जोधाराम के चार वर्ष के बच्चे साधो को पूरे दिन की रोटी भी खाने को नहीं मिल पाई । वह सारे दिन भूख से तड़पता हुआ भूखा सो जाता है । अपने बेटे साधो तथा पति जोधा राम को भूखा देखकर गृह लक्ष्मी देवकी के मन में हूक सी उठती है कि क्या विधाता भी जिसने मनुष्य को बनाया है उसकी दयनीय दशा पर नहीं पसीजता । इस प्रकार प्रेमचन्द

---

1. "पूस की रात," ‖मानसरोवर,भाग-1‖, प्रेमचन्द, पृष्ठ 156

ने जोधाराम की आर्थिक विपन्नता का वर्णन करके एक गांव की गरीब जनता का सही एवं स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है ।

भारतीय ग्रामीण जीवन की आर्थिक भिन्नता के मुख्य कारण :-

प्रेमचन्द का जन्म उस समय हुआ था जब देश आर्थिक तथा राजनैतिक दासता की जन्जीरों में जकड़ा हुआ था । विदेशी सरकार को भारत में अपने पैर जमाने के लिए एक ऐसे समुदाय की आवश्यकता थी जो कठिन परिस्थितियों में अंग्रेजी सरकार का साथ दे सके । इस वर्ग के अन्तर्गत राजा, जमींदार, पुलिस,सरकारी कर्मचारी, पटवारी तथा अदालत के सभी गण्य थे । अंग्रेजी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में जमींदार भी अपना प्रमुख स्थान रखते थे । यह भारतीय जनता विशेष रूप से कृषकों के सहयोगी न होकर अंग्रेजी सरकार के सहयोगी थे । ये अन्याय तथा अत्याचार के द्वारा कृषकों का शोषण तथा दमन करने में संलग्न थे । ये अपने स्वार्थ सिद्धी के लिए कृषकों का अत्यन्त शोषण करते थे । बिना मेहनताना दिये इस वर्ग से अपने कार्य कराते थे । यदि कार्यमें किसी भी प्रकार की कमी रह जाती थी तो उसका परिणाम उसे हंटरों के रूप में प्राप्त होता था । यह बेचारा बेजुबान कृषक तथा ग्रामीण वर्ग के लिए इन अत्याचारों को चुपचाप सहन करने के कोई उपाय नहीं था । क्योंकि जमींदार वर्ग को सरकार का सहयोग प्राप्त था जिससे जमींदारों को अनेक अनैतिक अधिकार भी प्राप्त थे । "लोकमत का सम्मान" तथा "विध्वंस" कहानी में प्रेमचन्द ने बेचू तथा मुहानी पर इस जमींदार वर्ग के अत्याचारों का यथार्थ चित्रण किया है । गांव का धोबी बेचू गांव के कृषकों की स्त्रियों तथा किसानों के द्वारा सम्मान पाकर तथा रूखी-सूखी खाकर भी प्रसन्न रहता था । किन्तु जब इन जमींदारों तथा नौकरों के अत्याचार बेचू पर होते तो उसका हृदय चित्कार कर उठता था । वह किसानों के धोले पर कपड़े धो

कर भी सन्तोष का अनुभव करता, किन्तु जमींदारों तथा उनके नौकरों के अत्याचार तथा क्रूरता कभी-कभी असह्य हो जाते तो उसका हृदय ग्रामीण जीवन से उचट जाता था । जमींदार तथा कारिंदे ही नहीं उनके चपरासी भी उससे साधिकारी मुफ्त कपड़े धुलवाते थे । यदि कभी बिना स्त्री किये कपड़े ले जाता तो उसकी शामत आ जाती थी । मार खानी पड़ती, घंटों चौपाल के सामने खड़ा रहना पड़ता । गालियों की बौछार होती । बेचू इन जमींदारों तथा उनके सहयोगियों के अत्याचारों से त्रस्त है । पानी की कमी तथा स्त्री के अभाव के कारण जब बेचू कारिंदे साहब के कपड़े थोड़ा विलम्ब से ले जाता है तो उसका सत्कार जूतों से होता है । बेचू न्याय तथा दया की दुहाई देता है लेकिन उसका दुष्परिणाम उनके सामने आता है कि उसे आठ दिन तक हल्दी और गुड़ पीना पड़ा ।[1]

इस कृषक का शोषण में केवल जमींदार ही नहीं वरन् साहूकार भी उसपर अपने हथकण्डे फेंकने से नहीं चूकता था । इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने "बलिदान" कहानीमें लिखा है - "गिरधारी अभी कुछ उत्तर न दे पाया था कि तुलसी बनिया आया और गरजकर बोला - "गिरधार, तुम्हें पैसे देने हैं कि नहीं, वैसा कहो" पैसे न देने पर किसान पर नालिश कर देना, बैल खोल ले जाना तथा मकान व जमीन पर डिग्री करना इनका सहज कार्य है । इनको क्या से कृषक भूखों ही प्राण क्यों न दे दें । इन्हें तो धन से मतलब है । मंगल सिंह भी धमकी दिलाकर गिरधार के 80 रुपया के बैल 60 रुपया में ले जाता है ।[2] लेन-देन करने वाले बनिये भी असामियों की गर्दन रेतने से नहीं चूकते ।[3]

---

1. "लोकमत का सम्मान," (मानसरोवर,सातवां भाग),प्रेमचन्द,पृ0 281-282
2. "बलिदान," (मानसरोवर,आठवां भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 68
3. "मुक्ति धन," (मानसरोवर, तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 175

सरकार का शोषक वर्ग को प्रबल समर्थन :

"भारत में भूमि व्यवस्था का पिछला इतिहास देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन जमींदारों की सृष्टि यहां अंग्रेजों ने की थी । अपने शासन को स्थायी बनाये रखने के लिए उन्हें भारतीय समाज के एक वर्ग का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक था । इस सामाजिक और राजनीतिक समर्थन के लिए जमींदारों को खड़ा किया गया । इतिहास इस बात का गवाह है कि जमींदारों ने संकट के प्रत्येक अवसर पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साथ दिया ।"[1]

प्रेमचन्द के युग में सरकार इस शोषक वर्ग की प्रबल समर्थक थी । अंग्रेजी सरकार के अपने कानून थे जो केवल सरकार के ही पक्ष में थे । इन कानूनों में कृषकों या ग्रामीण जनता के हितों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था । सरकार ने यह कानून न्याय के लिए नहीं अपितु कृषक वर्ग या भारतीय जनता के शोषण के लिए बनाये थे । कानून में न्याय का कोई स्थान न था सरकार ने देहातों में जो अपने कर्मचारी नियुक्त किये थे वे इन कृषकों तथा ग्रामीण जनता के द्वारा अपने स्वार्थों को पूर्ति करते थे । ग्रामों की दीन-हीन दशा को रखकर भी अधिकारी वर्ग इसके प्रति उपेक्षाभाव तथा न्याय सत्य तथा वास्तविकता के स्थान पर लोभ और स्वार्थ की पूर्ति करता । यह अधिकारी वर्ग भी सरकार का पिट्ठू होता । सरकार की अपनी अदालत होती । जिसमें न्याय केवल अमीर वर्ग के लिए होता था । न्याय प्राप्त करने के लिए स्थान-स्थान पर नजर-नजराने देने पड़ते थे । जिससे गरीब जनता अथवा गरीब कृषक इससे वंचित रहे जाते । सरकार चूंकि

---

1. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान," डा० रामबक्ष, पृष्ठ 180

भारत में एक शासक वर्ग के रूप में थी अतः यह भारतीय जनता तथा भारत का आर्थिक विकास नहीं चाहती थी उसका उद्देश्य अपना स्वार्थ सिद्धी और भारतीय जनता का शोषण था ।

शोषक वर्ग के अमानवीय अत्याचार

ब्रिटिश शासन काल में सरकार ने जमींदारों को अपने पक्ष में बनाये रखने के लिए विशेष अधिकार दिये थे । जमींदार वर्ग सरकार का कृपापात्र तथा ग्रामीण जनता व कृषकों का शोषक था, अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु यह सरकार तथा पुलिस की सहायता प्राप्त करता व कृषकों पर मनमाने पाशवीय अत्याचार करता । किसानों के ऊपर बेदखली, जाफ और नजराना आदि उसके शोषण के अस्त्र थे । वह अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति इस ग्रामीण जनता तथा कृषकों के द्वारा ही करता । यदि इस वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति होने में रुकावट पैदा होती तो सारे के सारे गांव में तहलका मचा देता था । देखते ही देखते गांव को नष्ट कर देता था । "इस परिवर्तन के द्वारा व्यवहार में अंग्रेजी विजेताओं की हकूमत का सारी जमीन पर अन्तिम अधिकार कायम हो गया और किसान महज दूसरे की जमीन पर लगान देकर खेती करने वाला बन गया । लगान न देने पर उसे जमीन से बेदखल किया जा सकता था । या अंग्रेज सरकार ने जमीन कुछ ऐसे लोगों को दे दी थी जिनको उसने जमींदार नामजद करना पसन्द किया । ये लोग भी सरकार की मर्जी से ही जमीन के मालिक थे और मालगुजारी न देने पर उनसे भी सारी जमीन छीन ली जा सकती थी।"1

"पछतावा" कहानी में कुंवर साहब मलूका किसान को अपने चपरासी से, निर्दोष होने पर भी पिटवाते हैं । अपने बाप को पिटते

1. "भारत : वर्तमान और भावी;" रजनीपाम दत्त- ओमप्रकाश संगल, पृष्ठ 86-87

हुए देखा मतूका के बेटों से जब नहीं रहा गया तो उन्होंने भी चपरासी कादिरखां को दो चार हाथ जमा दिये ।[1] इसका प्रतिफल मतूका के साथ चांदपार के समस्त किसानों को भोगना पड़ा और उनपर बकाया लगान की नालिश की गई, फसल नीलाम कराई गई, समन आये, घर-घर उदासी छा गई । समन क्या थे यम के दूत थे । देवी देवताओं की मिन्नते होने लगीं । स्त्रियों ने अपने घरवालों को कोसना शुरु कर दिया और पुरुषों ने अपने भाग्य को । नियत तारीख के दिन गांव के गंवार कन्धे पर लोटाडोर रखे और अंगोछे में चबेना बांधे कचहरी की ओर चले । सैकड़ों स्त्रियों व बालक रोते रोते हुए उनके पीछे-पीछे जाते थे ।[2] प्रेमचन्द ने इसी कहानी में आगे शोषक तथा शोषित वर्ग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है - "न्यायालय के सामने मेला सा लगा हुआ था । जहां-तहां श्यामाच्छादित देवताओं की पूजा हो रही थी । चांद पार के किसान झुंड के झुंड एक पेड़ के नीचे आकर बैठ गये उनसे कुछ दूर पर कुंवर साहब के मुख्तार आम, सिपाहियों और गवाहों की भीड़ थी । ये लोग अत्यन्त विनोद में थे । जिस प्रकार मछलियां पानी में पहुंच कर कलोल करती हैं उसी भांति ये लोग भी आनन्द में चूर थे । कोई पान खा रहा था । कोई हलवाई की दुकान से पूरियों को पत्तल लिए चला आता था । इधर बेचारे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा कौन सी आफत आयेगी ।[3] ये जमींदार वर्ग कृषकों को बिना रसीद दिये लगान वसूल करता था बाद में लगान न देने की कृषकों पर नालिश करता तथा अदालत में झूठी गवाही दिला कर इन कृषकों

---

1. "पछताना," ‖मानसरोवर, छठां भाग‖, प्रेमचन्द, पृष्ठ 255
2. "पछताना," ‖ " " " ‖, प्रेमचन्द, पृष्ठ 259
3. "पछताना," ‖ " " " ‖, प्रेमचन्द, पृष्ठ 259-260

को तबाह करके छोड़ता । लगान के लिए कृषकों की खड़ी फसलें कटवाना, घरों में आग लगाना, मुश्कें बांधकर पिटवाना, बैल खुलवाना, जमीन छीन लेना तथा तालाब का पानी बन्द कर देना आदि दण्ड तो जमींदारों को दृष्टि में साधारण थे । इन दण्डों का प्रयोग वे प्रतिवर्ष ही करते थे ।[1] अदालत, मारपीट, डाट-डपट आदि जमींदारों के श्रृंगार थे । बिना इन सब बातों के जमींदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे-बैठे वे मक्खियां मारें ।[2]

महाजनी शोषण के विविध रूप

भारत में जितने व्यवसाय हैं उन सब में से लेन-देन का व्यवसाय सबसे लाभदायक है । आमतौर पर सूद की दर पच्चीस रुपये सालाना है । बहुत कम ऐसे व्यवसाय हैं जिनमें पन्द्रह रुपये सैकड़े से अधिक लाभ हो । अत: भारत में महाजनी प्रथा ब्रिटिश काल में अपनी चरमोन्नति पर थी। जिसमें नजराने की रकम अलग, लिखाई अलग, दलाली अलग, अदालत का खर्चा अलग । ये समस्त रकमें किसी न किसी महाजन की ही जेब में जाती थी । इन सभी कारणों से महाजनी का धन्धा इतनी अधिक तरक्की पर था । वकील, डाक्टर सरकारी कर्मचारी, जमींदार, ब्राह्मण कोई भी जिसके पास फालतू धन होता वह यही धन्धा करने लगता । "प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता पर आधारित पूंजीवादी सौंदर्य धारणा को अपने वक्तव्यों में ही नहीं, अपने साहित्य में भी अमान्य ठहराया है । उनका सारा साहित्य इस बात का प्रमाण है ।" "मुक्ति धन" कहानी के लाला दाऊ दयाल भी इसी श्रेणी के महाजन थे । वह कचहरी के मुख्तारगीरी करते तथा जो कुछ भी बचत होती उसे 25, 30 रुपये सैकड़ा

---

1. "पछतावा," प्रेमचन्द, पृष्ठ 262
2. "पछतावा," प्रेमचन्द, पृष्ठ 263

वार्षिक ब्याज पर उठा देते, किन्तु उनका व्यवहार ग्रामीण निम्न श्रेणी के लोगों से ही रहता था । उच्च श्रेणी के लोगों से तो वे घोक्ते थे । क्योंकि इनसे रुपया लेने के बाद निकलना कठिन हो जाता था । निम्न श्रेणी के लोग अनपढ़ होते थे । अत: उन पर महाजनी में मनमानी की जा सक्ती थी, जिससे अधिक लाभ की गुंजाईश रहती थी ।[1]

संयुक्त परिवार प्रथा के टूटने से भूमि अनेक हिस्सों में बंट गई थी । भूमि की बरक्त उठ गई । सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों वश जीवन की परिस्थितियां बदल गई और उनके साथ ग्रामवासी भी बदले । अब उन्हें कृषि का मोह छोड़कर मजदूरी को अपनाना पड़ा । भूमि से सम्बद्ध मर्यादा की भावना सहिष्णुता, पौरुष तथा धैर्य सब कुछ तत्कालीन परिस्थितियों के हाथों समाप्त हो गये । ग्रामवासी झूठी मर्यादा छोड़कर शहरों की ओर बढ़े । जो बाहर निकालकर मजदूरी करने लगा उसे जीवन का सुख प्राप्त होने लगा तथा जो इस झूठी मर्यादा के बंधन में जकड़ा रहा उसने अपना शरीरान्त कठिन दुखमय परिस्थितियों के मध्य होकर दिया । "बलिदान" कहानी में गिरधारी खेती के मोह में तथा इस झूठी मर्यादा के चक्र में पसा रहा अन्त में इसी मर्यादा की रक्षा हेतु उसका प्राणान्त हो जाता है किन्तु गिरधारी का बेटा जब इस मर्यादा को तोड़कर कृषि के स्थान पर मजूरी करने निकल गया तो उसके दिन फिर गये, जब उसके शरीर पर अच्छे वस्त्र दीखने लगे, पैरों में जुता पहनता, घर में दोनों समय भोजन बनता, पहले जो भी नसीब न होता अब गेहूं की रोटियां खाता । वही कृषक जो कृषि संरक्षण की मर्यादा हेतु जीवन भर असीम वेदनाएं सहता रहा, असहाय व्यथा से युक्त जीवन व्यतीत किया, पथ-

---

1. "मुक्ति धन," [मानसरोवर, तीसरा भाग], प्रेमचन्द, पृष्ठ 172

पथ पर असफलताओं से भेंट होती रही, अन्त में विवशतापूर्ण तथा नैराश्यमय जीवन व्यतीत करता हुआ मृत्यु के मुख में प्रवेश कर गया । "सभ्यता का रहस्य" कहानी में राय साहब दमड़ी किसान को गाँव के झूठी मर्यादा के रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहते - "बैल को बेच क्यों नहीं डालता । सैकड़ों बार समझा चुका हूं, लेकिन न जाने क्यों इतनी मोटी सी बात तेरी समझ में नहीं आती । दमड़ी का प्रत्युत्तर सुनकर राय साहब आगे कहते हैं इन्हीं हिमाक्तों से तो तु लोग की यह दुर्गति हो रही - क्यों मुंशी जी इस पागलपन का भी कोई इलाज है ।[1] जाड़ों मर रहे हैं दरवाजे पर बैल बंधेंगे ।[2] प्रेमचन्द ने आगे चलकर इसी कहानी में राय साहब के माध्यम से स्पष्ट किया है कि यदि मर्यादा जीवन के विकास में बाधक है तो उसे छोड़ देना ही अधिक श्रेयष्कर है राय साहब ने पुरतों से चली आ रही रसमों को छोड़ दिया उन्होंने जीवन के विकास तथा सुख के लिए कुल मर्यादा को बलिदान कर दिया - "मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, दोनों में कौन सभ्य है, कुल प्रतिष्ठा पर प्राण देने वाले मूर्ख दमड़ी या धन पर कुलमर्यादा को बलि देने वाले राय रतन किशोर ।"[3]

कृषक-जीवन के नियामक तत्त्व

भारतीय कृषक का जीवन कृषि पर ही निर्भर होता था । यही उसकी अतुल सम्पत्ति तथा वैभव था, जिसके ऊपर वह समाज में सम्मान प्राप्त करता तथा समाज में सगर्व गर्दन उठाकर चलने का साहस करता था । अत: "सिपाही को अपनी लाल पगड़ी, सुन्दरी को अपने गहनों और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है

---

1. "बलिदान," (मानसरोवर," आठवां भाग), पृष्ठ 73
2. "सभ्यता का रहस्य," (मानसरोवर, चौथा भाग), पृष्ठ 199
3. "सभ्यता का रहस्य," (मानसरोवर, चौथा भाग), पृष्ठ 200

वही कृषक को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता । झींगुर अपने ऊख के खेतों को देखता तो उस पर नशा-सा छा जाता ।[1] उसकी समस्त सम्पत्ति खेतों तथा खलिहानों में ही होती है । इसी के सहारे उसका समस्त परिवार का पालन होता है तथा समस्त आशायें इसी कृषि पर ही निर्भर होती । कृषि ही उसकी आशाओं को निराशाओं में तथा निराशाओं को आशाओं में परिणित करती है । केवल किसान ही नहीं वरन् उसका समस्त परिवार इस पर तन, मन से परिश्रम करके महान् सुख का अनुभव करता है । "खेती की अवस्था अनाथ बालक की सी होती है । जल और वायु अनुकूल हुए तो अनाज के ढेर लग गये । इनकी कृपा न हुई तो लहलहाते खेत कपटी मित्र की भांति दगा दे गये । ओला और पाला सूखा और बाढ़, टिड्डी और लाही, दीमक और आंधी से प्राण बचे तो फसल खलिहान में आ पाती है, और खलिहान से आग और बिजली दोनों का वैर होता है । इतने दुश्मन से बचो तो फसल,नहीं तो फैसला ।[2] और यह फैसला है कृषक के भाग्य का । रहमान ने अपनी खेती में जो तोड़ परिश्रम किया । इस कृषक ने दिन को दिन तथा रात को रात न समझा । उसका समस्त परिवार अपने खेतों में दिलोजान से लिपट गया । परिणाम स्वरूप ऊख ऐसी हुई कि हाथी घुसे तो समा जाय ।[3] किन्तु रहमान को न पता था कि दैवीय आपदायें उसके भाग्य को अपने हाथों में ले नचा रही हैं । कृषक अपनी फसल के लिये न शीत देखता न जेठ की तपती गर्मी न ओले न आंधी-पानी । प्रकृति प्रदत्त अनेक कष्टों को सहन करता हुआ वह सभी ऋतुओं में अपनी खेती की रखवाली करता । रहमान मेड़ पर बैठा अपने इस पलते-पूसते खेतों की रखवाली कर रहा था, अगहन का महीना था, ओढ़ने के लिये केवल एक

---

1. "मुक्तिमार्ग," [मानसरोवर, तीसरा भाग], पृष्ठ 238
2. "मुक्तिधन," पृष्ठ 179
3. "मुक्तिधन," [मानसरोवर," तीसरा भाग], पृष्ठ 179

पुरानी गाढ़े की चादर थी अतः शीत निवारण हेतु उसने अपने पास ऊख के पत्ते जला लिये । उसी क्षण अग्नि देवता का प्रकोप उसकी लहराती फसल पर हो गया । हवा के झोंकों से जलता पत्ता खेत में जा पहुंचा और देखते देखते पूरी फसल जल गई, पूरा खेत जलकर राख का ढेर हो गया और खेत के साथ ही कृषक की भी समस्त अभिलाषाएं नष्ट हो गईं, दिल बैठ गया, परोसी हुई थाली सामने से छिन गई ।[1] इस दैवीय प्रकोप से रहमान ही नहीं समस्त कृषक वर्ग ही त्रस्त रहता है । न मालूम कब यह प्रकोप हो जाये और समस्त फसल को तहस नहस कर दे । "मुक्ति मार्ग" कहानी में भी झींगुर अपने लहराते खेतों को देखता है तो उस पर नशा सा छा जाता है । किन्तु आपसी द्वेष के कारण उसके खेत भी अग्नि देवता के प्रकोप के शिकार हो गये । बुद्धू गड़रिये ने आपसी द्वेषवश झींगुर की फसल को अग्नि देवता की भेंट चढ़ा दिया। देखते देखते समस्त गाँव की लहराती फसल नष्ट हो गई । किसान की सारी कमाई खेतों में रहती है या खलिहानों में । कितनी ही दैविक तथा भौतिक आपदाओं के बाद ही उसका अनाज घर आ पाता है ।[2]

ऋण समस्या : कृषक जीवन का अभिशाप

"प्रेमचन्द के चिन्तन के मूल में किसान की हित कामना है । अतः वे जिस किसी भी समस्या पर विचार करते हैं,उसकी पृष्ठभूमि में कहीं न कहीं किसान होता है - बिना किसान के उनका काम नहीं चलता ।[3] ऋण की समस्याप्रेमचन्द के युग में छूत के रोग के समान फैली हुई थी जो प्रत्येक ग्रामवासी को अपना शिकार बनाती तथा उसका जीवन अपने प्रकोप

---

1. "मुक्तिधन," पृष्ठ 179
2. "मुक्तिमार्ग," (मानसरोवर,तीसरा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 240
3. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान," डा० रामबक्ष, पृष्ठ 115

से आच्छादित कर अन्त में उसके प्राण हरण कर लेती है । प्रेमचन्द ने तो स्वयं ही आर्थिक विपन्नता की स्थिति में अपना जीवन व्यतीत किया था तथा वे स्वयं भी ऋणग्रस्त रहे । ऋण समस्या उनके जीवन में बादलों की तरह मंडराती रही लेकिन वे कभी इन समस्याओं के समक्ष झुके नहीं । इसलिए प्रेमचन्द की कहानियों में ऋण समस्या का अच्छा चित्रण मिलता है । भारतीय अर्थशास्त्र में ऋण समस्या संबंधी आंकड़ों से भी ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में सबसे अधिक ऋण ग्रामों में ही लिया जाता रहा है । भारतीय ग्रामों में ऋण वृद्धि का एक कारण यह भी था कि कृषकों को अपने व्यवसाय से हार्दिक लगाव था । कृषि को छोड़कर मजदूरी करना वे उचित न समझते । गांव की परम्परा सी बन गई थी कि मजदूर का वह सम्मान गांव में न था जो एक कृषक का था । परिणाम स्वरूप जीवन निर्वाह साधन केवल कृषि ही था और कृषि प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर थी जिससे कृषक को इतनी आमदनी नहीं हो पाती थी कि वह ठीक प्रकार अपने परिवार का पालन कर सके । कृषक का जीवन अभावों का जीवन था । फसल चाहे हो या न हो जमींदार को अपने लगान से मतलब था । अतः कृषक को मजबूर होकर जीवन निर्वाह तथा लगान अदा करने के लिए ऋण लेना पड़ता था । कृषि पर दैविक तथा भौतिक प्रकोप तथा कृषकों के पैरों में परम्परागत बेड़ियां पड़ी थी जो उसे कृषि छोड़कर अन्य कार्य करने से रोकती थी । जिससे कृषक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी । प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्वव्यापी मंदी से तो कृषकों की स्थिति और भी बदतर हो गई थी । अनाज के भाव गिर गये तथा कृषक को उतना लाभ नहीं होता जितना कि वह उत्पादन करता है । किन्तु फिर भी महाजन तथा जमींदार का डण्डा सदैव उनके ऊपर बना रहता था । "महाजनों द्वारा किसानों का शोषण, शोषण का यह धन्धा खूब फूला-फला । उत्तरी भारत में उस जमाने में शायद ही कोई किसान बचा हो, जिस पर कर्ज न हो ।"[1]

---

1. "प्रेमचन्द और भारतीय किसान," डा० रामबक्ष, पृष्ठ 197

ग्राम्य जीवन का आर्थिक पक्ष और उद्योग-धंधे

भारतवर्ष की ग्रामीण समाज की अर्थ-व्यवस्था कृषि तथा कुटीर उद्योग धंधों पर निर्भर थी। भारतीय अर्थव्यवस्था को निर्बल बनाने में भारतीय शोषक वर्ग तथा विदेशी सत्ता का प्रमुख हाथ रहा है। गाँव में बसी जनता अपना निर्वाह कृषि तथा छोटे घरेलू धंधों से ही करती है किन्तु कृषि भारतीय जमींदारों, कारिन्दों तथा महाजनों के ऋण से ग्रस्त थी तथा छोटे-छोटे उद्योग धंधों, विदेशी आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप विनष्ट होने लगे। विदेशों में मिलों की बनी वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा में भारतीय कारीगरों की हाथों से बनी वस्तुएं अधिक मंहगी पड़ती थी जिसके कारण विदेशी वस्तुओं की कीमत कम होने से विदेशी वस्तुओं का प्रचार तथा प्रयोग अधिक होने लगा और इसका प्रभाव ग्रामीण उद्योगधंधों पर विशेष रूप से पड़ा भारतीय ग्रामीण उद्योग-धंधे चौपट होने लगे और ग्रामीण अर्थव्यवस्था विश्रृंखलित होने लगी। हमारे देश का पैसा विदेशों में जाने लगा। "17 जुलाई, 1933 के शक्कर सम्मेलन पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है :-

"जब तक देश के सुदिन नहीं आते और सभी व्यवसाओं का राष्ट्रीयकरण नहीं हो जाता, पूंजीपतियों के हाथ में किसानों और मजदूरों की किस्मत रहेगी और सरकार ऊपरी मन से नियंत्रण करने का स्वांग भर कर कोई उपकार नहीं कर सकती। हम तो किसानों को यही सलाह देंगे कि वे खुद अपना संगठन करें और अपनी शक्कर खांड्सालों में बनाकर इस ड्यूटी का पूरा फायदा उठावें।"[1] "लाग-डाट" कहानी में चौधरी साहब कहते हैं - हमारे दादा-बाबा, छोटे-बड़े सब गाढ़ा गांजी पहनते थे। हमारी दादियां

---

1. "विविध प्रसंग," भाग-3, अमृत राय, पृष्ठ 496

नानियां सब घरखा काता करती थीं । सब धन देश में रहता था । हमारे जुलाहे भाई चैन की बंशी बजाते थे । अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़े पर जान देते हैं । इस तरह दूसरे देश वाले हमारा धन दो ले जाते हैं । बेचारे जुलाहे कंगाल हो गये । भारतीय ग्रामीणों के सामने को थाली विदेशी अधिकारियों के सामने चली गई । ग्रामीण उद्योगों का लोप हो गया ।[1] गांव के कृषक, जुलाहे, सुनार, बढ़ई तथा कुम्हार व मोची आदि अपने उद्योगधंधों से हाथ धो बैठे । ग्रामीणों को अपनी मर्यादा को छोड़कर दूसरी मजदूरी करने के लिए नगरों की ओर जाना पड़ा जहां पर दो वर्गों का उदय हुआ एक पूंजीवाद दूसरा मजदूर । पूंजीपति वर्ग अधिक सम्पन्न होता गया तथा मजदूर वर्ग अधिक निर्धन होता गया । इस कृषक को न देहातों में सुख-चैन था और न शहरों में हो । गांव से जमींदारों, कारिन्दों तथा महाजनों के द्वारा इनका शोषण हो रहा था । जान बचाकर नगरों में आये तो पूंजीपति वर्ग ने इनका रक्त चूसना प्रारम्भ कर दिया । गर्जमन्द मजदूर से पूंजीपति फायदा उठाते तथा उचित दर से कम उसको मजदूरी देते । किसी तरह अपने एक समय की रोटी का प्रबन्ध वह इस मजदूरी से कर पाता । दूसरे समय के भोजन के लिए अनेक अनैतिक कार्य करता ।

भारतीय ग्राम जीवन के आर्थिक पक्ष का जो चित्रण किया गया है उससे यह संकेत मिलता है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ ग्राम जीवन के इस पक्ष की भी समुचित व्यंजना करती हैं । प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष का जो चित्रण हुआ है वह विविध पक्षीय और सर्वरूपात्मक है। इस प्रसंग में यहां पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि प्रेमचन्द ने ग्राम जीवन के विश्रृंखलन का मूल कारण आर्थिक विभीषिका को ही माना है । उनका यह भी मत है कि आर्थिक हीनता और शोषण के अतिरेक

---

1. "लाग-डाट" (मानसरोवर, छठा भाग), प्रेमचन्द, पृष्ठ 224

के कारण ग्रामीण जनता नगरों की ओर आकृष्ट हो रही है । "पूस की रात" कहानी में उन्होंने हल्कू नामक किसान के माध्यम से भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है । "खून सफेद" कहानी में भी किसानों के एक प्रतिनिधि जोधाराम आर्थिक विपन्नता के कारण कई-कई दिनों तक निराहार भी रहता है । प्रेमचन्द का यह संकेत है कि इस स्थिति के लिए जमींदार,उत्तरदायी है । जमींदार वर्ग के अतिरिक्त साहूकार, कारिन्दे,पटवारी, दरोगा, महाजन तथा सरकार आदि सभी समान रूप से उत्तरदायी हैं । जमींदार वर्ग के शोषण का चित्रण लोकमत का सम्मान, "विध्वंस" बांका जमींदार" आदि कहानियों में विशेष रूप से हुआ है । "बलिदान" तथा "मुक्तिधन" में भी शताब्दियों से निरंतर होने वाले जमींदारी शोषण का प्रभावशाली चित्रण है । "उपदेश," "पछतावा" एवं अन्य अनेक कहानियों में यह संकेत है कि उक्त वर्गों के लोग कृषकों से पशु तुल्य व्यवहार करते हैं । "जेल" तथा समस्या" आदि कहानियों में ब्रिटिश सरकार के द्वारा शोषित कृषकों की दयनीय स्थिति का चित्रण है । "पछतावा तथा "मुक्तिधन" में शोषक वर्ग के अमानवीय अत्याचारों का चित्रण है । महाजन और उनके द्वारा होने वाले शोषण का चित्रण, "मुक्ति धन," "बेटी का धन," "पूस की रात," "सवासेर गेहूं" , "बलिदान," "सफेद खून," "सभ्यता का रहस्य" आदि कहानियों में विस्तार से किया गया है । प्रेमचन्द की यह सभी धारणा है कि भारतीय कृषक दैविक और भौतिक आपत्तियों को विधाता की लीला समझकर स्वीकार करता है फलतः उसका दृष्टिकोण पुरुषार्थ रहित तथा भाग्यवादी हो जाता है । "मुक्तिधन" तथा"पूस की रात" कहानियों में से यह संकेत है कि खेत और खेती ही किसान का सर्वस्व है और वह उन्हीं से अपनी समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति करता है । जब किसी कारण से खेती ठीक नहीं होती तब वह अभिशप्त होकर रह जाता है । कृषक जीवन की अन्य समस्याओं के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने सिंचाई, ऋण, जनसंख्या, सूखा, अतिवृष्टि अथवा अवृष्टि की स्थिति में कृषक ऋण लेने को बाध्य होता है । "उपदेश," "बलिदान," "मुक्तिमार्ग,"

"सभ्यता का रहस्य," "मुक्तिधन" तथा "सवासेर गेहूं" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने यह संकेत किया है कि अभावग्रस्तता भारतीय कृषक की सबसे बड़ी विवशता है और इसका निदान सहकारी स्तर पर ही हो सकता है। कृषि और लगान की समस्या के क्षेत्र में प्रेमचन्द ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि अपेक्षित खेती न होने पर भी लगान भरना किसान की सबसे बड़ी विवशता है और उससे वह कभी उबर नहीं पाता "जेल," "समर यात्रा," पछतावा" तथा "बांका जमींदार" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने यह संकेत किया है कि नवचेतना का जागरण ही कृषकों को इस समस्या से मुक्ति दिला सकता है। इस प्रसंग में यहां पर इस तथ्य की ओर संकेत करना भी असंगत न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जमींदार उन्मूलन से ये समस्या समाप्त हो गई है। ग्राम जीवन के आर्थिक पक्ष के अन्तर्गत प्रस्तुत अध्याय में औद्योगिक समस्याओं की ओर भी संकेत किया गया है। प्रेमचन्द के समकालीन गांवों में कृषि और कुटीर उद्योग, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण पक्ष था। "लाग-डाट," "पशु से मनुष्य" तथा अन्य अनेक कहानियों में प्रेमचन्द ने कुटीर उद्योग के विकास के लिए सहकारिता आदि से संबंधित कुछ सुझाव दिये हैं। संक्षेप में प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियां भारतीय कृषक की आर्थिक विपन्नता तथा अभिशाप का जीवन चित्रित करती हैं। प्रेमचन्द ने भारतीय कृषक की आर्थिक समस्याओं का सिंहावलोकन करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, अदूरदर्शिता और स्वार्थपरक आदि ही इन समस्याओं के मूल में विद्यमान है। अतः इनके निराकरण से ही उसे इस शोषण से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। यह संतोष का विषय है कि सहकारिता तथा जमींदारी उन्मूलन के कारण उक्त समस्याओं में से अधिकांश अब क्रमशः समाप्त हो रही है और भारतीय कृषक इन अभिशापों से मुक्ति का अनुभव करके जागरूक हो रहा है।

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध के विगत अध्यायों में प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है। इसके प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम प्रेमचन्द युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के उन आधारभूत सूत्रों का उल्लेख किया गया है जिनकी पीठिका पर प्रेमचन्द युग की प्रतिष्ठा हुई। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी के इतिहास में तृतीय विकासकाल को प्रेमचन्द युग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसकी कालसीमा का निर्धारण प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्यवर्ती काल के रूप में किया जाता है जिसका देश के इतिहास में अनेक दृष्टियों से विशिष्ट महत्व है। क्योंकि इसमें सर्वक्षेत्रीय नवचेतना का जागरण हुआ है। इसी क्रम में प्रेमचन्द की आविर्भाव कालीन परिस्थितियों का भी निरूपण किया गया है। इस प्रसंग में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उन सूत्रों की ओर संकेत किया गया है, जिनका प्रेमचन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में योगदान रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष का अध्ययन किया गया है। जैसा कि अन्यत्र संकेत किया जा चुका है प्रेमचन्द ने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में ग्रामीण जीवन का समग्र रूपात्मक चित्रण का आधार बीसवीं शताब्दी के प्रथम चार दशकों का भारत है। प्रेमचन्द एक इकाई के रूप में व्यक्ति को ही परिवार और समाज का निर्माता मानते है। उनका यह निश्चित मन्तव्य है कि ग्रामीण समाज की अखण्डता तभी बाधित हुई जब संयुक्त परिवार की प्रथा का विशृंखलन हुआ क्योंकि वे ही इसकी नींव थे। ग्रामीण सामाजिक परम्परागत रूप संयुक्त परिवार की प्रथा पर आधारित था। एकाकी

परिवार के एक जन्म से ये व्यवस्था समाप्त हुई और इसमें व्यक्ति और परिवार को तोड़कर रख दिया । "सवासेर गेहूँ" जैसी कहानियों में प्रेमचन्द ने ये संकेत किया है कि अपने भागीरथ परीश्रम से कुल मर्यादा का जो वृक्ष ग्रामजन लगाते हैं और उसे अपने रक्त से सींचते हैं उसे जड़ से उखाड़ता देखकर उनका हृदय किस प्रकार से शोकाकुल हो जाता है । "दो भाई" कहानी में भी संयुक्त और एकाकी परिवार के विरोधाभास का मार्मिक चित्रण किया गया है । इस कहानी में केदार नाथ माधव के पृथकत्व कराने का दायित्व लेकर चम्पा और श्यामा पर डालता है । प्रेमचन्द की ये धारणा है कि एकाकी परिवार का जन्म अप्रिय होते हुए भी युग जीवन की एक आवश्यकता है क्योंकि पहले जहाँ संयुक्त परिवार पारस्परिक स्नेह का प्रतीक था वहाँ वह अब परस्पर फूट और विद्वेष का जन्मदाता बन गया है । "अलग्योझा" कहानी में भी इसी अभिशाप का चित्रण है । प्रेमचन्द ने नारी को सामाजिक संरचना का मूलाधार स्वीकार किया है । उनकी धारणा है कि अन्धविश्वासी और अज्ञानी ग्रामीण समाज में अनेक संस्कार और मान्यताएं नारी के लिए शोषण का एक बड़ा कारण सिद्ध हो रही है । "नरक"का मार्ग" जैसी कहानी में उन्होंने नारी को अनमेल विवाह से अभिशप्त इंगित किया है । "शांति" कहानी में नारी की पराधीनता का चित्रण है । "अभिलाषा" में स्त्री की शोषित स्थिति और "निर्वासन" में उसकी उपेक्षा और अवमानना का चित्रण है । प्रेमचन्द का ये भी संकेत है कि अपने असीम धैर्य से नारी ने शताब्दियों से इस अपमान और तिरस्कार का सहन करके दूसरों को सुख और शांति दी है । नारी जीवन से संबंधित समस्याओं के संबंध में प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया है । गाँवों में विवाह को एक दैवीय सम्बन्ध माना जाता है जिसकी विधाता ईश्वर के द्वारा होता है । "स्वर्ग की देवी" कहानी में अनमेल विवाह की विडम्बना का चित्रण है । "नरक का मार्ग" में विवाह को नारी के लिए कारावास तुल्य चित्रित किया गया हैजिसका अन्त पत्नी के वैधव्य में होता है । इसी

प्रकार से "उद्धार" कहानी में भी ग्रामीण समाज में विवाह की दूषित प्रथा का चित्रण है । इसी प्रसंग में बाल विवाह एवं विधवा विवाह की समस्या का भी चित्रण प्रेमचन्द ने किया है । "नैराश्यलीला" कहानी में वैधव्य के कलंक से कलंकित कैलाश कुमारी की व्यथा का मार्मिक चित्रण है जो गौने से पहले ही कम उम्र में विधवा हो गई थी । उस बाल विधवा के लिए स्वाध्याय, संयम, उपासना और धर्म ग्रंथों का पारायण ही एक मात्र मार्ग शेष था इसी प्रकार से "धिक्कार" कहानी में मानी के माध्यम से विधवा की हीन स्थिति का चित्रण किया गया है जहां पर पराश्रित और अपमानित होकर रहने के लिए बाध्य है । "बेटों वाली विधवा" में उस कानून के प्रति व्यंग्य किया गया है जिसके अनुसार बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों को हो जाती है और मां का एक केवल रोटी कपड़े का रह जाता है । "तृतक भोज", "शराब की दुकान", "विध्वंस", "स्वामिनी", "मां" तथा सुभागी आदि कहानियों में भी ग्रामीण समाज में विधवा के जीवन का विविध पक्षीय चित्रांकन हुआ है । "स्त्री और पुरुष" कहानी में अनमेल विवाह के निदान के रूप में लड़के लड़की के पारस्परिक विचार विनिमय को उचित बताया गया है । ग्रामीण समाज में पर्दे की प्रथा के कारण नारी के शारीरिक तथा मानसिक विकास की गति कितनी अवरुद्ध रहती है इसका चित्रण "स्वर्ग की देवी" कहानी में हुआ है । "कानूनी कुमार" में प्रेमचन्द ने उस समाज का उपहास किया है जहां एक ओर तो तलाक बिल पास कराने की योजना ऐसेम्बली में प्रस्तुत कराया है वहां दूसरी ओर पर्दा हटाओ बिल भी प्रस्तुत कराया है परन्तु यह सब केवल सैद्धान्तिक रूप में ही है अन्यथा व्यवहार में इसका बिल्कुल उल्टा है । "आगापीछा" कहानी में प्रेमचन्द ने बहुविवाह की प्रथा का विरोध किया है । क्योंकि वह स्त्रियों के प्रति महान अन्याय है । "अग्नि समाधि" और "बहिस्कार" आदि कहानी में भी बहुविवाह के व्यावहारिक पक्षों का चित्रण किया है । "उन्माद" कहानी में उन्होंने बहुविवाह को सुख शांति के विनाश का मूल कारण बताया है । इसी क्रम में प्रेमचंद ने अन्तर्जातीय विवाह का भी चित्रण किया है । जो जातिपांति के बन्धन को तोड़ने की दिशा में एक कदम है । "कायर" तथा "बहिष्कार" कहानियों में इसका समर्थन करते हुए उन्होंने रूढ़ियों और अज्ञान के अन्धकार को दूर करने का संदेश दिया है । दहेज प्रथा शताब्दियों

से भारतीय समाज के लिए एक बड़ा अभिशाप सिद्ध हो रही है । "उद्धार" कहानी में इस प्रथा के निरन्तर बढ़ते जाने का चित्रण है । प्रेमचन्द इसके घोर विरोधी थे । "एक आँच की कसर" कहानी में उन्होंने इस कानूनी तौर पर प्रतिबन्धित करने की माँग की है । ग्रामीण समाज में व्याप्त वेश्या समस्या का चित्रण भी प्रेमचन्द ने "नरक का मार्ग", "वेश्या", "दो कब्रें" "आगापीछा" तथा "डामुल का कैदी" आदि कहानियों में किया है । उनकी धारणा है कि किसी भी मूल्य पर इस कलंक से मुक्ति के लिए समाज को कृतसंकल्प होना चाहिए । समाज और बिरादरी से संबंधित बहुसंख्यक रूढ़ियाँ गाँवों में शताब्दियों से चली आ रही है । इसका एक चित्रात्मक पक्ष यह है कि जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त के समस्त संस्कार बिरादरी के सहयोग, इच्छा और अनुमति से सम्पन्न होते हैं । "दण्ड", "खून सफेद" तथा "मृतक भोज" आदि कहानियों में उन्होंने इस प्रथा के माध्यम से होने वाले सर्वतोमुखी शोषण का चित्रण किया है । इसी प्रकार से ग्रामीण समाज की अन्य अनेक समस्याओं का चित्रण प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में किया है । "दासवासी" कहानी में नैतिक भ्रष्टाचार "शान्ति" कहानी में पारिवारिक कलह, "पंचपरमेश्वर" में भावनात्मक द्वन्द्व तथा पंचायत व्यवस्था आदि से संबंधित समस्याओं का चित्रण है, "सभ्यता का रहस्य" में पशुओं के प्रति अनुराग-विरागमयी मानवीय भावनाओं का चित्रण है क्योंकि गाँवों में पशुधन का बड़ा विशेष महत्व है । "दो बैलों की कथा", "मुक्तिधन" तथा "बलिदान" आदि कहानियों में कृषकों के अपने पशुओं के प्रति अनन्य प्रेम का जो चित्रण है वह ग्रामीण समाज की गौरवमयी भावनाओं का प्रतीक है । संक्षेप में प्रेमचन्द का ये मन्तव्य है कि आधुनिक भारत का ग्रामीण समाज आज भी अनेक विरोधाभासों के शोषण अन्धविश्वासों और अभिशापों के होते हुए भी जीवन्त बना हुआ है ।

इस पुस्तक के तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित ग्राम जीवन के राजनैतिक पक्ष का अध्ययन किया गया है । प्रेमचन्द यह स्वीकार करते हैं कि साहित्यकार युग जीवन की राजनैतिक स्थिति का नियंत्रक होता है । उन्होंने अपनी बहुसंख्यक कहानियों में यह भी संकेत किया है कि स्वराज्य का

आन्दोलन ग्रामों में विशेष रूप से प्रचारित हुआ क्योंकि कृषक और श्रमिक वर्ग बहुपक्षीय शोषण से ग्रस्त था और विभिन्न शोषक वर्गों तथा सरकार से संघर्ष करने में स्वयं को असमर्थ पाकर क्रान्ति और आन्दोलन के माध्यम से ही अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कृत-संकल्प हुआ ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष का अध्ययन किया गया है । प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियाँ ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष का समुचित निरूपण करने में असमर्थ हैं । यह आर्थिक पक्षीय चित्रण सर्वेक्षणात्मक है क्योंकि प्रेमचन्द ग्राम जीवन के विशृंखलन का मूल कारण आर्थिक विभीषिका को ही मानते हैं उनका ये निश्चित मंतव्य है कि आर्थिक हीनता और आर्थिक शोषण के अतिरिक के कारण ही ग्रामीण जनता नगरोन्मुखी हो रही है । "पूस की रात" कहानी में हल्कू नामक कृषक के माध्यम से उन्होंने भारतीय कृषक की आर्थिक विपन्नता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है । "सवेरा जून" कहानी में जादोराम अटूट परिश्रम करके भी कई कई दिनों तक निराहार रहने को बाध्य हो जाता है । प्रेमचन्द इस स्थिति के लिए जमींदार साहूकार, कारिन्दे, पटवारी, दरोगा, महाराज तथा सरकार आदि सभी को समान रूप से उत्तरदायी मानते हैं । इनमें से सर्वाधिकार और प्रत्यक्षतः शोषण का दायित्व जमींदार वर्ग पर है । इसका चित्रण "लोकमत का सम्मान", "विध्वंस", तथा "बाँका जमींदार" आदि कहानियों में विशेष रूप से हुआ है । इसी प्रकार से "बलिदान" तथा "मुक्तिधन" आदि कहानियों में भी जमींदारों द्वारा शासकियों से शोषित किसान की मर्म-भेदी व्यथा व्यंजित हुई है । इसी प्रसंग में प्रेमचन्द ने ये संकेत किया है कि जमींदारों के प्रतिनिधि और कर्मचारी भी कृषकों का शोषण करते हैं और उनसे पशु-तुल्य व्यवहार करते हैं । "उपदेश","पछतावा" आदि कहानियाँ इसी वर्ग की हैं । "जेल" तथा "समर यात्रा" आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने तत्कालीन

ब्रिटिश सरकार द्वारा शोषित कृषक का चित्र प्रस्तुत किया है। "पछतावा" तथा "मुक्तिधन" आदि कहानियों में भी शोषक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण है। महाजन वर्ग द्वारा होने वाले आर्थिक शोषण का चित्रण "मुक्तिधन", "बेटी का धन", "पूस की रात", "सवासेर गेहूं", "सभ्यता का रहस्य" आदि कहानियों में पर्याप्त विस्तार के साथ किया गया है। इस प्रसंग में इस तथ्य की ओर संकेत करना भी असंगत न होगा कि भारतीय कृषक पुरुषार्थी कम तथा भाग्यवादी अधिक है। यही कारण है कि वह अनेक आपत्तियों को भाग्य का फल मानकर ईश्वरीय विधान के रूप में स्वीकार करता है। प्रेमचन्द ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह विश्लेषित किया है कि भारतीय ग्रामीण जीवन की आर्थिक विवशता का मूलाधार छोटे-छोटे कुटीर ही थे। पूंजीवादी तथा औद्योगिक व्यवस्था के प्रचार के कारण ये लघु उद्योग समाप्त हो गये और इस प्रकार के उद्योग जीवियों को श्रमिक बनने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी के कारण ऋण के अभिशाप से वे भी ग्रस्त हुए। जिससे मुक्ति का तत्कालीन व्यवस्था में कोई उपाय नहीं था।

संक्षेप में प्रेमचन्द की बहुसंख्यक कहानियां भारतीय ग्रामीण जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, पक्षों का समग्र रचनात्मक चित्रण करती है और उनमें भारतीय ग्रामीण जीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ मूर्तिमान हुआ है।

परिशिष्ठ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(क) : प्रेमचन्द की रचनाएं

: मानसरोवर, भाग - 1,
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1973

: मानसरोवर, भाग - 2,
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1973

: मानसरोवर, भाग - 3,
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1973

: मानसरोवर, भाग - 4,
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1975

: मानसरोवर, भाग - 5,
हंस प्रकाश, इलाहबाद

: मानसरोवर, भाग - 6
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1970

: मानसरोवर, भाग 7
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1976

: मानसरोवर, भाग - 8
सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1970

: गुप्तधन, भाग - 1
प्रस्तुतकर्त्ता - अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962

: गुप्तधन, भाग - 2
प्रस्तुत-कर्त्ता - अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962

: कफन (कहानी संग्रह)
हंस प्रकाशन, इलाहबाद

: चिट्ठी पत्री, भाग - 1
संकलन - लिप्यंतर - शब्दार्थ - अमृतराय
मदन गोपाल
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
: चिट्ठी पत्री, भाग - 2
संकलन - लिप्यंतर - शब्दार्थ - मदन गोपाल
अमृत राय
हंस प्रकाशन , इलाहबाद, 1962
: विविध प्रसंग, भाग - 1
संकलन और सम्पादन - अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
: विविध प्रसंग, भाग - 2
संकलन और सम्पादन - अमृत राय
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
: विविध प्रसंग, भाग - 3
संकलन और सम्पादन - अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
: साहित्य का उद्देश्य
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1967

(ख) प्रेमचन्द संबंधी आलोचनात्मक ग्रन्थ

अमृत राय : कलम का सिपाही
हंस प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
इन्द्रनाथ मदान : प्रेमचन्द एक विवेचन
विश्वनाथ तिवारी (सम्पादक) : प्रेमचन्द
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 1980

रामरक्षा : प्रेमचन्द और भारतीय किसान
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983

गंगा प्रसाद विमल : प्रेमचन्द
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,-1968

चन्द्रभानु मिश्र "प्रभाकर" : प्रेमचन्द की कहानी कला : मानसरोवर के संदर्भ में
हिन्दी साहित्य भन्डार, लखनऊ, 1974

जगतनरायण हैकरवाल : प्रेमचन्द
अक्षरपीठ प्रकाशन, इलाहबाद, 1972

जैनेन्द्र कुमार : प्रेमचन्द एक कृति व्यक्तित्व
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1973

त्रिलोकी नारायण दीक्षित : प्रेमचन्द
साहित्य निकेतन कानपुर

नन्द दुलारे वाजपेयी : प्रेमचन्द : साहित्य विवेचन
हिन्दी भवन, इलाहबाद, 1954

नूरजहाँ : कहानीकार प्रेमचन्द
हिन्दी साहित्य भन्डार, लखनऊ, 1975

भारत सिंह : प्रेमचन्द के नारी पात्र
पुस्तक प्रचार, दिल्ली, 1973

मदन गोपाल : कलम का मजदूर प्रेमचन्द
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

रक्षापुरी : प्रेमचन्द के साहित्य में व्यक्ति और समाज
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1970

रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गांधीवाद
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1961

रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, बनारस, 1941

शिवरानी देवी प्रेमचन्द : प्रेमचन्द घर में
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1956

सुभद्रा : प्रेमचन्द साहित्य में ग्राम्य जीवन
अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1972

अरविन्द जोशी : गान्धीवादी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1973

नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968

ए०आर० देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि
अनुवादक - प्रयागदत्त त्रिपाठी
मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंण्डिया, नई दिल्ली, 1976

रजनी पाम दत्त : आज का भारत
अनुवादक - आनन्द स्वरूप वर्मा
मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंण्डिया, नई दिल्ली, 1977

(ग) पत्र पत्रिकाएँ

: मर्यादा
: सरस्वती
: विशाल भारत
: हंस
: जागरण
: आलोचना
: पूर्वाग्रह